ॐ

भृगुवल्ली*

प्रथम अनुवाक

भृगुर्वै वारुणिः, वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत्प्रोवाच। अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति। तँ होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा।

वै=यह प्रसिद्ध है कि; **वारुणिः**=वरुणका पुत्र; **भृगुः**=भृगु; **पितरम्**=अपने पिता; **वरुणम् उपससार**=वरुणके पास गया (और विनयपूर्वक बोला—); **भगवः**=भगवन्!; (मुझे) **ब्रह्म अधीहि**=ब्रह्मका उपदेश कीजिये; **इति**=इस प्रकार प्रार्थना करनेपर; **तस्मै**=उससे; (वरुणने) **एतत्**=यह; **प्रोवाच**=कहा; **अन्नम्**=अन्न; **प्राणम्**=प्राण; **चक्षुः**=नेत्र; **श्रोत्रम्**=श्रोत्र; **मनः**=मन; (और) **वाचम्**=वाणी; **इति**=इस प्रकार (ये सब ब्रह्मकी उपलब्धिके द्वार हैं), **तम् ह उवाच**=पुनः (वरुणने) उससे कहा; **वै**=निश्चय ही; **इमानि**=ये सब प्रत्यक्ष दीखनेवाले; **भूतानि**=प्राणी; **यतः**=जिससे; **जायन्ते**=उत्पन्न होते हैं; **जातानि**=उत्पन्न होकर; **येन**=जिसके सहारे; **जीवन्ति**=जीवित रहते हैं; (तथा) **प्रयन्ति**=(अन्तमें इस लोकसे) प्रयाण करते हुए; **यत् अभिसंविशन्ति**=जिसमें प्रवेश करते हैं; **तत्**=उसको; **विजिज्ञासस्व**=तत्त्वसे जाननेकी इच्छा कर; **तत्**=वही; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **इति**=इस प्रकार (पिताकी बात सुनकर); **सः**=उसने; **तपः अतप्यत**=तप किया; **सः**=उसने; **तपः तप्त्वा**=तप करके—

---

* वरुणने अपने पुत्र भृगु ऋषिको जिस ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया था, उसीका इस वल्लीमें वर्णन है, इस कारण इसका नाम भृगुवल्ली है।

व्याख्या—भृगु नामसे प्रसिद्ध एक ऋषि थे, जो वरुणके पुत्र थे। उनके मनमें परमात्माको जानने और प्राप्त करनेकी उत्कट अभिलाषा हुई, तब वे अपने पिता वरुणके पास गये। उनके पिता वरुण वेदको जाननेवाले, ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष थे; अतः भृगुको किसी दूसरे आचार्यके पास जानेकी आवश्यकता नहीं हुई। अपने पिताके पास जाकर भृगुने इस प्रकार प्रार्थना की—'भगवन् ! मैं ब्रह्मको जानना चाहता हूँ, अतः आप कृपा करके मुझे ब्रह्मका तत्त्व समझाइये।' तब वरुणने भृगुसे कहा 'तात ! अन्न, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, मन और वाणी—ये सभी ब्रह्मकी उपलब्धिके द्वार हैं। इन सबमें ब्रह्मकी सत्ता स्फुरित हो रही है।' साथ ही यह भी कहा—'ये प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले सब प्राणी जिनसे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिनके सहयोगसे, जिनका बल पाकर ये सब जीते हैं—जीवनोपयोगी क्रिया करनेमें समर्थ होते हैं और महाप्रलयके समय जिनमें विलीन हो जाते हैं, उनको वास्तवमें जाननेकी (पानेकी) इच्छा कर। वे ही ब्रह्म हैं।' इस प्रकार पिताका उपदेश पाकर भृगु ऋषिने ब्रह्मचर्य और शम-दम आदि नियमोंका पालन करते हुए तथा समस्त भोगोंके त्यागपूर्वक संयमसे रहते हुए पिताके उपदेशपर विचार किया। यही उनका तप था। इस प्रकार तप करके उन्होंने क्या किया, यह बात अगले अनुवाकमें कही गयी है।

॥ प्रथम अनुवाक समाप्त ॥ १ ॥



द्वितीय अनुवाक

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तँ होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा।

अन्नम्=अन्न; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **इति**=इस प्रकार; **व्यजानात्**=जाना; हि=क्योंकि; **खलु**=सचमुच; **अन्नात्**=अन्नसे; **एव**=ही; **इमानि**=ये सब; **भूतानि**=प्राणी; **जायन्ते**=उत्पन्न होते हैं; **जातानि**=उत्पन्न होकर; **अन्नेन**= अन्नसे ही; **जीवन्ति**=जीते हैं; (और) **प्रयन्ति**=(अन्तमें यहाँसे) प्रयाण करते हुए; **अन्नम् अभिसंविशन्ति**=अन्नमें ही प्रविष्ट होते हैं; **इति**=इस प्रकार; **तत्**=उसको; **विज्ञाय**=जानकर; (वह) **पुनः**=पुनः; **पितरम्**=अपने पिता; **वरुणम् एव उपससार**=वरुणके ही पास गया; (तथा अपनी समझी हुई बात उसने पिताको सुनायी; किंतु पिताने उसका समर्थन नहीं किया। तब वह बोला—) **भगवः**=भगवन्!; (मुझे) **ब्रह्म अधीहि**=ब्रह्मका बोध कराइये; **इति**=तब; **तम् ह उवाच**=उससे सुप्रसिद्ध वरुण ऋषिने कहा; **तपसा**=तपसे; **ब्रह्म**=ब्रह्मको; **विजिज्ञासस्व**=तत्त्वतः जाननेकी इच्छा कर; **तपः**=तप ही; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **इति**=इस प्रकार (पिताकी आज्ञा पाकर); **सः**=उसने; **तपः अतप्यत**=(पुनः) तप किया; **सः**=उसने; **तपः तप्त्वा**=तप करके—

व्याख्या—भृगुने पिताके उपदेशानुसार यह निश्चय किया कि अन्न ही ब्रह्म है; क्योंकि पिताजीने ब्रह्मके जो लक्षण बताये थे, वे सब अन्नमें पाये जाते हैं। समस्त प्राणी अन्नसे—अन्नके परिणामभूत वीर्यसे उत्पन्न होते हैं, अन्नसे ही उनका जीवन सुरक्षित रहता है और मरनेके बाद अन्नस्वरूप इस पृथ्वीमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार निश्चय करके वे पुनः अपने पिता वरुणके पास आये। आकर अपने निश्चयके अनुसार उन्होंने सब बातें कहीं। पिताने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने सोचा—'इसने अभी ब्रह्मके स्थूल रूपको ही समझा है, वास्तविक रूपतक इसकी बुद्धि नहीं गयी; अतः इसे तपस्या करके अभी और विचार करनेकी आवश्यकता है। पर जो कुछ इसने समझा है, उसमें इसकी तुच्छ बुद्धि कराकर अश्रद्धा उत्पन्न कर देनेमें भी इसका हित नहीं है, अतः इसकी बातका उत्तर न देना ही ठीक है।' पितासे अपनी बातका समर्थन न पाकर भृगुने फिर प्रार्थना की—'भगवन्! यदि मैंने ठीक नहीं समझा हो तो आप मुझे ब्रह्मका तत्त्व समझाइये।' तब वरुणने

कहा—'तू तपके द्वारा ब्रह्मके तत्त्वको समझनेकी कोशिश कर। यह तप ब्रह्मका ही स्वरूप है, अतः यह उनका बोध करानेमें सर्वथा समर्थ है।' इस प्रकार पिताकी आज्ञा पाकर भृगु ऋषि पुनः पहलेकी भाँति तपोमय जीवन बिताते हुए पितासे पहले सुने हुए उपदेशके अनुसार ब्रह्मका स्वरूप निश्चय करनेके लिये विचार करते रहे। इस प्रकार तप करके उन्होंने क्या किया, यह बात अगले अनुवाकमें कही गयी है।

॥ द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥ २ ॥



तृतीय अनुवाक

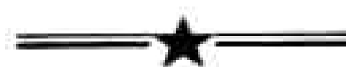
प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। प्राणेन जातानि जीवन्ति। प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तँ होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा।

प्राणः=प्राण; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **इति**=इस प्रकार; **व्यजानात्**=जाना; **हि**=क्योंकि; **खलु**=सचमुच; **प्राणात्**=प्राणसे; **एव**=ही; **इमानि**=ये समस्त; **भूतानि**=प्राणी; **जायन्ते**=उत्पन्न होते हैं; **जातानि**=उत्पन्न होकर; **प्राणेन**= प्राणसे ही; **जीवन्ति**=जीते हैं (और); **प्रयन्ति**=(अन्तमें यहाँसे) प्रयाण करते हुए; **प्राणम् अभिसंविशन्ति**=प्राणमें ही सब प्रकारसे प्रविष्ट हो जाते हैं; **इति**=इस प्रकार; **तत्**=उसे; **विज्ञाय**=जानकर; **पुनः**=फिर; **पितरम् वरुणम् एव उपससार**=(अपने) पिता वरुणके ही पास गया (और वहाँ उसने अपना निश्चय सुनाया; जब पिताने उत्तर नहीं दिया, तब वह बोला—); **भगवः**= भगवन्! (मुझे); **ब्रह्म अधीहि**=ब्रह्मका उपदेश दीजिये; **इति**=इस प्रकार प्रार्थना करनेपर; **ह तम् उवाच**=सुप्रसिद्ध वरुण ऋषिने उससे कहा; **ब्रह्म**=ब्रह्मको; **तपसा**=तपसे; **विजिज्ञासस्व**=तत्त्वतः जाननेकी इच्छा कर;

तपः=तप ही; **ब्रह्म**=ब्रह्म अर्थात् उनकी प्राप्तिका बड़ा साधन है; **इति**=इस प्रकार पिताकी आज्ञा पाकर; **सः**=उसने (पुनः); **तपः अतप्यत**=तप किया; **सः**= उसने; **तपः तप्त्वा**=तप करके—

व्याख्या—भृगुने पिताके उपदेशानुसार तपके द्वारा यह निश्चय किया कि प्राण ही ब्रह्म है; उन्होंने सोचा, पिताजीद्वारा बताये हुए ब्रह्मके लक्षण प्राणमें पूर्णतया पाये जाते हैं। समस्त प्राणी प्राणसे उत्पन्न होते हैं, अर्थात् एक जीवित प्राणीसे उसीके सदृश दूसरा प्राणी उत्पन्न होता हुआ प्रत्यक्ष देखा जाता है; तथा सभी प्राणसे ही जीते हैं। यदि श्वासका आना-जाना बन्द हो जाय, यदि प्राणद्वारा अन्न ग्रहण न किया जाय तथा अन्नका रस समस्त शरीरमें न पहुँचाया जाय तो कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता और मरनेके बाद सब प्राणमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं। यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि मृत शरीरमें प्राण नहीं रहते; अतः निःसन्देह प्राण ही ब्रह्म है, यह निश्चय करके वे पुनः अपने पिता वरुणके पास गये। पहलेकी भाँति अपने निश्चयके अनुसार उन्होंने पुनः पितासे अपना अनुभव निवेदन किया। पिताने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने सोचा कि यह पहलेकी अपेक्षा तो कुछ सूक्ष्मतामें पहुँचा है; परंतु अभी बहुत कुछ समझना शेष है; अतः उत्तर न देनेसे अपने-आप इसकी जिज्ञासामें बल आयेगा; अतः उत्तर न देना ही ठीक है। पिताजीसे अपनी बातका समर्थन न पाकर भृगुने फिर उनसे प्रार्थना की—'भगवन्! यदि अब भी मैंने ठीक न समझा हो तो आप ही कृपा करके मुझे ब्रह्मका तत्त्व समझाइये।' तब वरुणने पुनः वही बात कही—'तू तपके द्वारा ब्रह्मको जाननेकी चेष्टा कर; यह तप ही ब्रह्म है, अर्थात् ब्रह्मके तत्त्वको जाननेका प्रधान साधन है।' इस प्रकार पिताजीकी आज्ञा पाकर भृगु ऋषि फिर उसी प्रकार तपस्या करते हुए पिताके उपदेशपर विचार करते रहे। तपस्या करके उन्होंने क्या किया, यह अगले अनुवाकमें बताया गया है।

॥ तृतीय अनुवाक समाप्त ॥ ३ ॥



चतुर्थ अनुवाक

मनो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। मनसा जातानि जीवन्ति। मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तँ होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा।

मनः=मन; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **इति**=इस प्रकार; **व्यजानात्**=समझा; **हि**=क्योंकि; **खलु**=सचमुच; **मनसः**=मनसे; **एव**=ही; **इमानि**=ये समस्त; **भूतानि**=प्राणी; **जायन्ते**=उत्पन्न होते हैं; **जातानि**=उत्पन्न होकर; **मनसा**=मनसे ही; **जीवन्ति**=जीते हैं; (तथा) **प्रयन्ति**= (इस लोकसे) प्रयाण करते हुए; (अन्तमें) **मनः अभिसंविशन्ति**=मनमें ही सब प्रकारसे प्रविष्ट हो जाते हैं; **इति**=इस प्रकार; **तत्**=उस ब्रह्मको; **विज्ञाय**=जानकर; **पुनः एव**=फिर भी; **पितरम्**=अपने पिता; **वरुणम् उपससार**=वरुणके पास गया (और अपनी बातका कोई उत्तर न पाकर बोला—); **भगवः**=भगवन्! (मुझे); **ब्रह्म अधीहि**=ब्रह्मका उपदेश दीजिये; **इति**=इस प्रकार (प्रार्थना करनेपर); **ह तम् उवाच**=सुप्रसिद्ध वरुण ऋषिने उससे कहा; **ब्रह्म**=ब्रह्मको; **तपसा**=तपसे; **विजिज्ञासस्व**=तत्त्वतः जाननेकी इच्छा कर; **तपः**=तप ही; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **इति**=इस प्रकार पिताकी आज्ञा पाकर; **सः**=उसने; **तपः अतप्यत**=तप किया; **सः**=उसने; **तपः तप्त्वा**=तप करके—

व्याख्या—इस बार भृगुने पिताके उपदेशानुसार यह निश्चय किया कि मन ही ब्रह्म है; उन्होंने सोचा, पिताजीके बताये हुए ब्रह्मके सारे लक्षण मनमें पाये जाते हैं। मनसे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं—स्त्री और पुरुषके मानसिक प्रेमपूर्ण सम्बन्धसे ही प्राणी बीजरूपसे माताके गर्भमें आकर उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर मनसे ही इन्द्रियोंद्वारा समस्त जीवनोपयोगी वस्तुओंका उपभोग करके जीवित रहते हैं और मरनेके बाद मनमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं—मरनेके बाद इस शरीरमें प्राण और इन्द्रियाँ नहीं रहतीं, इसलिये मन ही ब्रह्म है। इस प्रकार निश्चय करके वे पुनः पहलेकी भाँति अपने पिता वरुणके पास गये और

उन्होंने अपने अनुभवकी बात पिताजीको सुनायी। इस बार भी पितासे कोई उत्तर नहीं मिला। पिताने सोचा कि यह पहलेकी अपेक्षा तो गहराईमें उतरा है, परंतु अभी इसे और भी तपस्या करनी चाहिये; अतः उत्तर न देना ही ठीक है। पितासे अपनी बातका उत्तर न पाकर भृगुने पुनः पहलेकी भाँति प्रार्थना की—'भगवन्! यदि मैंने ठीक न समझा हो तो कृपया आप ही मुझे ब्रह्मका तत्त्व समझाइये।' तब वरुणने पुनः वही उत्तर दिया—'तू तपके द्वारा ब्रह्मके तत्त्वको जाननेकी इच्छा कर। अर्थात् तपस्या करते हुए मेरे उपदेशपर पुनः विचार कर। यह तपरूप साधन ही ब्रह्म है। ब्रह्मको जाननेका इससे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है।' इस प्रकार पिताकी आज्ञा पाकर भृगुने पुनः पहलेकी भाँति संयमपूर्वक रहकर पिताके उपदेशपर विचार किया। विचार करके उन्होंने क्या किया, यह बात अगले अनुवाकमें कही गयी है।

॥ चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥ ४ ॥



पञ्चम अनुवाक

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तँ होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा।

विज्ञानम्=विज्ञान; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **इति**=इस प्रकार; **व्यजानात्**=जाना; **हि**=क्योंकि; **खलु**=सचमुच; **विज्ञानात्**=विज्ञानसे; **एव**=ही; **इमानि**=ये समस्त; **भूतानि**=प्राणी; **जायन्ते**=उत्पन्न होते हैं; **जातानि**=उत्पन्न होकर; **विज्ञानेन**=विज्ञानसे ही; **जीवन्ति**=जीते हैं; (और) **प्रयन्ति**=अन्तमें यहाँसे प्रयाण करते हुए; **विज्ञानम् अभिसंविशन्ति**=विज्ञानमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं; **इति**=इस प्रकार; **तत्**=उस ब्रह्मको; **विज्ञाय**=जानकर; **पुनः एव**=(वह) पुनः उसी

प्रकार; **पितरम्**=अपने पिता; **वरुणम् उपससार**=वरुणके पास गया; (और अपनी बातका उत्तर न मिलनेपर बोला—) **भगवः**=भगवन्!; (मुझे) **ब्रह्म अधीहि**=ब्रह्मका उपदेश दीजिये; **इति**=इस प्रकार कहनेपर; **ह तम् उवाच**=सुप्रसिद्ध वरुण ऋषिने उससे कहा; **ब्रह्म**=ब्रह्मको; **तपसा**=(तू) तपके द्वारा; **विजिज्ञासस्व**=तत्त्वतः जाननेकी इच्छा कर; **तपः**=तप ही; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **इति**=इस प्रकार पिताकी आज्ञा पाकर; **सः**=उसने; **तपः अतप्यत**=पुनः तप किया; **सः**=उसने; **तपः तप्त्वा**=तप करके—

व्याख्या—इस बार भृगुने पिताके उपदेशानुसार यह निश्चय किया कि यह विज्ञानस्वरूप चेतन जीवात्मा ही ब्रह्म है; उन्होंने सोचा—पिताजीने जो ब्रह्मके लक्षण बताये थे, वे सब-के-सब पूर्णतया इसमें पाये जाते हैं। ये समस्त प्राणी जीवात्मासे ही उत्पन्न होते हैं, सजीव चेतन प्राणियोंसे ही प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष देखी जाती है। उत्पन्न होकर इस विज्ञानस्वरूप जीवात्मासे ही जीते हैं; यदि जीवात्मा न रहे तो ये मन, इन्द्रियाँ, प्राण आदि कोई भी नहीं रह सकते और कोई भी अपना काम नहीं कर सकते तथा मरनेके बाद ये मन आदि सब जीवात्मामें ही प्रविष्ट हो जाते हैं—जीवके निकल जानेपर मृत शरीरमें ये सब देखनेमें नहीं आते। अतः विज्ञानस्वरूप जीवात्मा ही ब्रह्म है। यह निश्चय करके वे पहलेकी भाँति अपने पिता वरुणके पास आये। आकर उन्होंने अपने निश्चित अनुभवकी बात पिताजीको सुनायी। इस बार भी पिताजीने कोई उत्तर नहीं दिया। पिताने सोचा—'इस बार यह बहुत कुछ ब्रह्मके निकट आ गया है, इसका विचार स्थूल और सूक्ष्म—दोनों प्रकारके जडतत्त्वोंसे ऊपर उठकर चेतन जीवात्मातक तो पहुँच गया है। परंतु ब्रह्मका स्वरूप तो इससे भी विलक्षण है, वे तो नित्य आनन्दस्वरूप एक अद्वितीय परमात्मा हैं; इसे अभी और तपस्या करनेकी आवश्यकता है, अतः उत्तर न देना ही ठीक है।' इस प्रकार बार-बार पिताजीसे कोई उत्तर न मिलनेपर भी भृगु हतोत्साह या निराश नहीं हुए। उन्होंने पहलेकी भाँति पुनः पिताजीसे वही प्रार्थना की—'भगवन्! यदि मैंने ठीक न समझा हो तो आप मुझे ब्रह्मका

रहस्य बतलाइये।' तब वरुणने पुनः वही उत्तर दिया—'तू तपके द्वारा ही ब्रह्मके तत्त्वको जाननेकी इच्छा कर। अर्थात् तपस्यापूर्वक उसका पूर्वकथनानुसार विचार कर। तप ही ब्रह्म है।' इस प्रकार पिताजीकी आज्ञा पाकर भृगुने पुनः पहलेकी भाँति संयमपूर्वक रहते हुए पिताके उपदेशपर विचार किया। विचार करके उन्होंने क्या किया, यह आगे बताया गया है।

॥ पञ्चम अनुवाक समाप्त ॥ ५ ॥



षष्ठ अनुवाक

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। स य एवं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या।

आनन्दः=आनन्द ही; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **इति**=इस प्रकार; **व्यजानात्**=निश्चयपूर्वक जाना; **हि**=क्योंकि; **खलु**=सचमुच; **आनन्दात्**=आनन्दसे; **एव**=ही; **इमानि**=ये समस्त; **भूतानि**=प्राणी; **जायन्ते**=उत्पन्न होते हैं; **जातानि**=उत्पन्न होकर; **आनन्देन**=आनन्दसे ही; **जीवन्ति**=जीते हैं; (तथा) **प्रयन्ति**=इस लोकसे प्रयाण करते हुए; (अन्तमें) **आनन्दम् अभिसंविशन्ति**=आनन्दमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं; **इति**=इस प्रकार (जाननेपर उसे परब्रह्मका पूरा ज्ञान हो गया); **सा**=वह; **एषा**=यह; **भार्गवी**=भृगुकी जानी हुई; **वारुणी**=और वरुणद्वारा उपदेश की हुई; **विद्या**=विद्या; **परमे व्योमन्**=विशुद्ध आकाशस्वरूप परब्रह्म परमात्मामें; **प्रतिष्ठिता**=प्रतिष्ठित है अर्थात् पूर्णतः स्थित है; **यः**=जो कोई (दूसरा साधक) भी; **एवम्**=इस प्रकार (आनन्दस्वरूप ब्रह्मको); **वेद**=जानता है; **सः**=वह; (उस विशुद्ध आकाशस्वरूप परमानन्दमें) **प्रतितिष्ठति**=स्थित हो जाता है; (इतना ही नहीं; इस लोकमें लोगोंके देखनेमें भी वह) **अन्नवान्**=बहुत

****

अन्नवाला; **अन्नादः**=और अन्नको भलीभाँति पचानेकी शक्तिवाला; **भवति**=हो जाता है; (तथा) **प्रजया**=संतानसे; **पशुभिः**= पशुओंसे; (तथा) **ब्रह्मवर्चसेन**= ब्रह्मतेजसे सम्पन्न होकर; **महान्**=महान्; **भवति**=हो जाता है; **कीर्त्या [अपि]**=उत्तम कीर्तिके द्वारा भी; **महान्**=महान्; **[भवति]**=हो जाता है।

व्याख्या—इस बार भृगुने पिताके उपदेशपर गहरा विचार करके यह निश्चय किया कि आनन्द ही ब्रह्म है। ये आनन्दमय परमात्मा ही अन्नमय आदि सबके अन्तरात्मा हैं। वे सब भी इन्हींके स्थूलरूप हैं। इसी कारण उनमें ब्रह्मबुद्धि होती है और ब्रह्मके आंशिक लक्षण पाये जाते हैं। परंतु सर्वांशसे ब्रह्मके लक्षण आनन्दमें ही घटते हैं; क्योंकि ये समस्त प्राणी उन आनन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मासे ही सृष्टिके आदिमें उत्पन्न होते हैं—इन सबके आदि कारण तो वे ही हैं तथा इन आनन्दमयके आनन्दका लेश पाकर ही ये सब प्राणी जी रहे हैं—कोई भी दुःखके साथ जीवित रहना नहीं चाहता। इतना ही नहीं, उन आनन्दमय सर्वान्तर्यामी परमात्माकी अचिन्त्यशक्तिकी प्रेरणासे ही इस जगत्के समस्त प्राणियोंकी सारी चेष्टाएँ हो रही हैं। उनके शासनमें रहनेवाले सूर्य आदि यदि अपना-अपना काम न करें तो एक क्षण भी कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता। सबके जीवनाधार सचमुच वे आनन्दस्वरूप परमात्मा ही हैं तथा प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंसे भरा हुआ यह ब्रह्माण्ड उन्हींमें प्रविष्ट होता है—उन्हींमें विलीन होता है, वे ही सब प्रकारसे सदा-सर्वदा सबके आधार हैं। इस प्रकार अनुभव होते ही भृगुको परब्रह्मका यथार्थ ज्ञान हो गया। फिर उन्हें किसी प्रकारकी जिज्ञासा नहीं रही। श्रुति स्वयं उस विद्याकी महिमा बतलानेके लिये कहती है—वही यह वरुणद्वारा बतायी हुई और भृगुको प्राप्त हुई ब्रह्मविद्या (ब्रह्मका रहस्य बतानेवाली विद्या) है। यह विद्या विशुद्ध आकाशस्वरूप परब्रह्म परमात्मामें स्थित है। वे ही इस विद्याके भी आधार हैं। जो कोई मनुष्य भृगुकी भाँति तपस्यापूर्वक इसपर विचार करके परमानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्माको जान लेता है, वह भी उन विशुद्ध परमानन्दस्वरूप परमात्मामें स्थित हो जाता है।

इस प्रकार इस विद्याका वास्तविक फल बताकर मनुष्योंको उस साधनकी ओर लगानेके लिये उपर्युक्त प्रकारसे अन्न, प्राण आदि समस्त तत्त्वोंके रहस्य विज्ञानपूर्वक ब्रह्मको जाननेवाले ज्ञानीके शरीर और अन्तःकरणमें जो स्वाभाविक विलक्षण शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, उनको भी श्रुति बतलाती है। वह अन्नवान् अर्थात् नाना प्रकारके जीवन-यात्रोपयोगी भोगोंसे सम्पन्न हो जाता है और उन सबको सेवन करनेकी सामर्थ्य भी उसमें आ जाती है। अर्थात् उसके मन, इन्द्रियाँ और शरीर सर्वथा निर्विकार और नीरोग हो जाते हैं। इतना ही नहीं, वह संतानसे, पशुओंसे, ब्रह्मतेजसे और बड़ी भारी कीर्तिसे समृद्ध होकर जगत्में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है।

॥ षष्ठ अनुवाक समाप्त ॥ ६ ॥



सप्तम अनुवाक

सम्बन्ध—*छठे अनुवाकमें ब्रह्मज्ञानीके अन्न और प्रजा आदिसे सम्पन्न होनेकी बात कही गयी; इसपर यह जिज्ञासा होती है कि ये सब सिद्धियाँ भी क्या ब्रह्मसाक्षात्कार होनेपर ही मिलती हैं या इन्हें प्राप्त करनेका दूसरा उपाय भी है। इसपर इन सबकी प्राप्तिके दूसरे उपाय भी बताये जाते हैं—*

अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम्। प्राणो वा अन्नम्। शरीरमन्नादम्। प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम्। शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या।

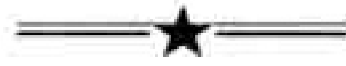
अन्नम् न निन्द्यात्=अन्नकी निन्दा न करे; **तत्**=वह; **व्रतम्**=व्रत है; **प्राणः**=प्राण; **वै**=ही; **अन्नम्**=अन्न है; (और) **शरीरम्**=शरीर; (उस प्राणरूप अन्नसे जीनेके कारण) **अन्नादम्**=अन्नका भोक्ता है; **शरीरम्**=शरीर; **प्राणे**=प्राणके आधारपर; **प्रतिष्ठितम्**=स्थित हो रहा है; (और) **शरीरे**=शरीरके आधारपर; **प्राणः**=प्राण; **प्रतिष्ठितः**=स्थित हो रहे हैं; **तत्**=इस तरह; **एतत्**=

यह; **अन्ने**=अन्नमें ही; **अन्नम्**=अन्न; **प्रतिष्ठितम्**=स्थित हो रहा है; **यः**=जो मनुष्य; **अन्ने**=अन्नमें ही; **अन्नम्**=अन्न; **प्रतिष्ठितम्**=प्रतिष्ठित हो रहा है; **एतत्**=इस रहस्यको; **वेद**=जानता है; **सः**=वह; **प्रतितिष्ठति**=उसमें प्रतिष्ठित हो जाता है; (अतः) **अन्नवान्**=अन्नवाला; (और) **अन्नादः**=अन्नको खानेवाला; **भवति**=हो जाता है; **प्रजया**=प्रजासे; **पशुभिः**=पशुओंसे; **ब्रह्मवर्चसेन**=(और) ब्रह्मतेजसे सम्पन्न होकर; **महान्**=महान्; **भवति**=बन जाता है; (तथा) **कीर्त्या**=कीर्तिसे (सम्पन्न होकर भी); **महान्**=महान्; **[भवति]**= हो जाता है।

व्याख्या—इस अनुवाकमें अन्नका महत्त्व बतलाकर उसे जाननेका फल बताया गया है। भाव यह है कि जो मनुष्य अन्नादिसे सम्पन्न होना चाहे; उसे सबसे पहले तो यह व्रत लेना चाहिये कि 'मैं कभी अन्नकी निन्दा नहीं करूँगा।' यह एक साधारण नियम है कि जिस किसी वस्तुको मनुष्य पाना चाहता है, उसके प्रति उसकी महत्त्वबुद्धि होनी चाहिये; तभी वह उसके लिये प्रयत्न करेगा। जिसकी जिसमें हेयबुद्धि है, वह उसकी ओर आँख उठाकर देखेगा भी नहीं। अन्नकी निन्दा न करनेका व्रत लेकर अन्नके इस महत्त्वको समझना चाहिये कि अन्न ही प्राण है और प्राण ही अन्न है; क्योंकि अन्नसे ही प्राणोंमें बल आता है और प्राणशक्तिसे ही अन्नमय शरीरमें जीवनी शक्ति आती है। यहाँ प्राणको अन्न इसलिये भी कहा है कि यही शरीरमें अन्नके रसको सर्वत्र फैलाता है। शरीर प्राणके ही आधार टिका हुआ है, इसीलिये वह प्राणरूप अन्नका भोक्ता है। शरीर प्राणमें स्थित है अर्थात् शरीरकी स्थिति प्राणके अधीन है और प्राण शरीरमें स्थित है—प्राणोंका आधार शरीर है, यह बात प्रत्यक्ष है ही। इस प्रकार यह अन्नमय शरीर भी अन्न है। यह अनुभवसिद्ध विषय है कि प्राणोंको आहार न मिलनेपर वे शरीरकी धातुओंको ही सोख लेते हैं। और शरीरकी स्थिति प्राणके अधीन होनेसे प्राण भी अन्न ही हैं। अतः शरीर और प्राणका अन्योन्याश्रयसम्बन्ध होनेसे यह कहा गया है कि अन्नमें ही अन्न स्थित हो रहा है। यही इसका तत्त्व है। जो मनुष्य इस रहस्यको समझ लेता है, वही शरीर और प्राण—इन दोनोंका ठीक-ठीक

उपयोग कर सकता है। इसीलिये यह कहा गया है कि वह शरीर और प्राणोंके विज्ञानमें पारङ्गत हो जाता है और इसी विज्ञानके फलस्वरूप वह सब प्रकारकी भोगसामग्रीसे युक्त और उसे उपभोगमें लानेकी शक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। इसीलिये वह संतानसे, नाना प्रकारके पशुओंसे और ब्रह्मतेजसे भी सम्पन्न होकर महान् बन जाता है। उसकी कीर्ति, उसका यश जगत्में फैल जाता है और उसके द्वारा भी वह जगत्में महान् हो जाता है।

॥ सप्तम अनुवाक समाप्त ॥ ७ ॥



अष्टम अनुवाक

अन्नं न परिचक्षीत। तद् व्रतम्। आपो वा अन्नम्। ज्योतिरन्नादम्। अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम्। ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या।

अन्नम् न परिचक्षीत=अन्नकी अवहेलना न करे; **तत्**=वह; **व्रतम्**=एक व्रत है; **आपः**=जल; **वै**=ही; **अन्नम्**=अन्न है; (और) **ज्योतिः**=तेज; **अन्नादम्**=(रसस्वरूप) अन्नका भोक्ता है; **अप्सु**=जलमें; **ज्योतिः**=तेज; **प्रतिष्ठितम्**=प्रतिष्ठित है; **ज्योतिषि**=तेजमें; **आपः**=जल; **प्रतिष्ठिताः**=प्रतिष्ठित है; **तत्**=वही; **एतत्**=यह; **अन्ने**=अन्नमें; **अन्नम्**=अन्न; **प्रतिष्ठितम्**=प्रतिष्ठित है; **यः**=जो मनुष्य; (इस प्रकार) **अन्ने**=अन्नमें; **अन्नम्**=अन्न; **प्रतिष्ठितम्**=प्रतिष्ठित है; **एतत्**=इस रहस्यको; **वेद**=भलीभाँति समझता है; **सः**=वह; (अन्तमें) **प्रतितिष्ठति**=(उस रहस्यमें) परिनिष्ठित हो जाता है; (तथा) **अन्नवान्**=अन्नवाला; (और) **अन्नादः**=अन्नको खानेवाला; **भवति**=हो जाता है; **प्रजया**=(वह) संतानसे; **पशुभिः**=पशुओंसे; (और) **ब्रह्मवर्चसेन**=ब्रह्म-तेजसे; **महान्**=महान्; **भवति**=बन जाता है; (तथा) **कीर्त्या**=कीर्तिसे (समृद्ध होकर भी); **महान्**=महान्;

[भवति]=हो जाता है।

व्याख्या—इस अनुवाकमें जल और ज्योति—दोनोंको अन्नरूप बताकर उन्हें जाननेका फल बतलाया है। भाव यह है कि जिस मनुष्यकी अन्नादिसे सम्पन्न होनेकी इच्छा हो, उसे यह नियम ले लेना चाहिये कि 'मैं कभी अन्नकी अवहेलना नहीं करूँगा अर्थात् अन्नका उल्लङ्घन, दुरुपयोग और परित्याग नहीं करूँगा एवं उसे जूठा नहीं छोड़ूँगा।' यह साधारण नियम है कि जो जिस वस्तुका अनादर करता है, उसके प्रति उपेक्षाबुद्धि रखता है, वह वस्तु उसका कभी वरण नहीं करती। किसी भी वस्तुको प्राप्त करनेके लिये उसके प्रति आदरबुद्धि रखना परमावश्यक है। जिसकी जिसमें आदर बुद्धि नहीं है, वह उसे पानेकी इच्छा अथवा चेष्टा क्यों करेगा। इस प्रकार अन्नकी अवहेलना न करनेका व्रत लेकर फिर अन्नके इस तत्त्वको समझना चाहिये कि जल ही अन्न है; क्योंकि सब प्रकारके अन्न अर्थात् खाद्य वस्तुएँ जलसे ही उत्पन्न होती हैं और ज्योति अर्थात् तेज ही इस जलरूप अन्नको भक्षण करनेवाला है। जिस प्रकार अग्नि एवं सूर्यरश्मियाँ आदि बाहरके जलका शोषण करती हैं, उसी प्रकार शरीरमें रहनेवाली जठराग्नि शरीरमें जानेवाले जलीय तत्त्वोंका शोषण करती है। जलमें ज्योति प्रतिष्ठित है। यद्यपि जल स्वभावतः ठंडा है, अतएव उसमें उष्ण ज्योति कैसे स्थित है—यह बात समझमें नहीं आती, तथापि शास्त्रोंमें यह माना गया है कि समुद्रमें बड़वानल रहता है तथा आजकलके वैज्ञानिक भी जलमेंसे बिजली-तत्त्वको निकालते हैं। इससे यह बात सिद्ध होती है कि जलमें तेज स्थित है। इसी प्रकार तेजमें जल स्थित है, यह तो प्रत्यक्ष देखनेमें आता ही है; क्योंकि सूर्यकी प्रखर किरणोंमें स्थित जल ही हमलोगोंके सामने वृष्टिके रूपमें प्रत्यक्ष होता है। इस प्रकार ये जल और तेज अन्योन्याश्रित होनेके कारण समस्त अन्नरूप खाद्य पदार्थोंके कारण हैं; अतः ये ही उनके रूपमें परिणत होते हैं; इसलिये दोनों अन्न ही हैं। इस प्रकार अन्न ही अन्नमें प्रतिष्ठित है। जो मनुष्य इस तत्त्वको समझ लेता है, वह इन दोनोंके विज्ञानमें प्रतिष्ठित अर्थात् सिद्ध हो जाता है; क्योंकि वही इन दोनोंका ठीक उपयोग कर सकता है। इसीके फलस्वरूप

वह अन्नसे अर्थात् सब प्रकारकी भोग-सामग्रीसे सम्पन्न और उन सबको यथायोग्य उपभोगमें लानेकी सामर्थ्यसे युक्त हो जाता है और इसीलिये वह संतानसे, नाना प्रकारके पशुओंसे और ब्रह्मतेजसे सम्पन्न हो महान् हो जाता है। इतना ही नहीं, इस समृद्धिके कारण उसका यश सर्वत्र फैल जाता है, वह बड़ा भारी यशस्वी हो जाता है और उस यशके कारण भी वह महान् हो जाता है।

॥ अष्टम अनुवाक समाप्त ॥ ८ ॥



नवम अनुवाक

अन्नं बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्। पृथिवी वा अन्नम्। आकाशोऽन्नादः। पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः। आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या।

अन्नम्=अन्नको; **बहु कुर्वीत**=बढ़ाये; **तत्**=वह; **व्रतम्**=एक व्रत है; **पृथिवी**=पृथ्वी; **वै**=ही; **अन्नम्**=अन्न है; **आकाशः**=आकाश; **अन्नादः**=पृथ्वीरूप अन्नका आधार होनेसे (मानो) अन्नाद है; **पृथिव्याम्**=पृथ्वीमें; **आकाशः**=आकाश; **प्रतिष्ठितः**=प्रतिष्ठित है; **आकाशे**=आकाशमें; **पृथिवी**=पृथ्वी; **प्रतिष्ठिता**=प्रतिष्ठित है; **तत्**=वही; **एतत्**=यह; **अन्ने**=अन्नमें; **अन्नम्**=अन्न; **प्रतिष्ठितम्**=प्रतिष्ठित है; **यः**=जो मनुष्य; (इस प्रकार) **अन्ने**=अन्नमें; **अन्नम्**=अन्न; **प्रतिष्ठितम्**=प्रतिष्ठित है; **एतत्**=इस रहस्यको; **वेद**=भलीभाँति जान लेता है; **सः**=वह; (उस विषयमें) **प्रतितिष्ठति**=प्रतिष्ठित हो जाता है; **अन्नवान्**=अन्नवाला; (और) **अन्नादः**=अन्नको खानेवाला अर्थात् उसे पचानेकी शक्तिवाला; **भवति**=हो जाता है; **प्रजया**=(वह) प्रजासे; **पशुभिः**=पशुओंसे; (और) **ब्रह्मवर्चसेन**=ब्रह्मतेजसे; **महान्**=महान्; **भवति**=बन जाता है; **कीर्त्या**=कीर्तिसे; **[च]**=भी; **महान्**=महान्; **[भवति]**=हो जाता है।

व्याख्या—इस अनुवाकमें पृथ्वी और आकाश दोनोंको अन्नरूप बताकर उनके तत्त्वको जाननेका यह फल बताया गया है। भाव यह है कि जिस मनुष्यको अन्नादिसे समृद्ध होनेकी इच्छा हो, उसे पहले तो यह व्रत लेना चाहिये—यह दृढ़ संकल्प करना चाहिये कि 'मैं अन्नको खूब बढ़ाऊँगा।' किसी वस्तुका अभ्युदय—उसका विस्तार चाहना ही उसे आकर्षित करनेका सबसे श्रेष्ठ उपाय है। जो जिस वस्तुको क्षीण करनेपर तुला हुआ है, वह वस्तु उसे कदापि नहीं मिल सकती और मिलनेपर टिकेगी नहीं। इसके बाद अन्नके इस तत्त्वको समझना चाहिये कि पृथ्वी ही अन्न है—जितने भी अन्न हैं, वे सब पृथ्वीसे ही उत्पन्न होते हैं और पृथ्वीको अपनेमें विलीन कर लेनेवाला इसका आधारभूत आकाश ही अन्नाद अर्थात् इस अन्नका भोक्ता है। पृथ्वीमें आकाश स्थित है, क्योंकि वह सर्वव्यापी है; और आकाशमें पृथ्वी स्थित है—यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है। ये दोनों ही एक-दूसरेके आधार होनेके कारण अन्नस्वरूप हैं। पाँच भूतोंमें आकाश पहला तत्त्व है और पृथ्वी अन्तिम तत्त्व है; बीचके तीनों तत्त्व इन्हींके अन्तर्गत हैं। समस्त भोग्यपदार्थरूप अन्न इन पाँच महाभूतोंके ही कार्य हैं; अतः ये ही अन्नके रूपमें स्थित हैं। इसलिये अन्नमें ही अन्न प्रतिष्ठित है। जो मनुष्य इस बातको तत्त्वसे जानता है कि पृथ्वीरूप अन्नमें आकाशरूप अन्न और आकाशरूप अन्नमें पृथ्वीरूप अन्न प्रतिष्ठित है, वही आकाश आदि पाँचों भूतोंका यथायोग्य उपयोग कर सकता है और इसीलिये वह इस विषयमें सिद्ध हो जाता है। इसी विज्ञानके फलस्वरूप वह अन्नसे अर्थात् सब प्रकारके भोग्य पदार्थोंसे और उनको उपभोगमें लानेकी शक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। इसीलिये वह संतानसे, नाना प्रकारके पशुओंसे और विद्याके तेजसे समृद्ध हो महान् बन जाता है। उसका यश समस्त जगत्में फैल जाता है, अतः वह यशके द्वारा भी महान् हो जाता है।

॥ नवम अनुवाक समाप्त ॥ ९ ॥



****

दशम अनुवाक

न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत। तद् व्रतम्। तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात्। आराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते। एतद्वै मुखतोऽन्नँ्राद्धम्। मुखतोऽस्मा अन्नँ्राध्यते। एतद्वै मध्यतोऽन्नँ्राद्धम्। मध्यतोऽस्मा अन्नँ्राध्यते। एतद्वा अन्ततोऽन्नँ्राद्धम्। अन्ततोऽस्मा अन्नँ्राध्यते। य एवं वेद।

वसतौ=अपने घरपर (ठहरनेके लिये आये हुए); **कंचन**=किसी (भी अतिथि) को; **न प्रत्याचक्षीत**=प्रतिकूल उत्तर न दे; **तत्**=वह; **व्रतम्**=एक व्रत है; **तस्मात्**=इसलिये; (अतिथि-सत्कारके लिये) **यया कया च विधया**=जिस किसी भी प्रकारसे, **बहु**=बहुत-सा; **अन्नम्**=अन्न; **प्राप्नुयात्**=प्राप्त करना चाहिये; (क्योंकि सद्गृहस्थ) **अस्मै**=इस (घरपर आये हुए अतिथि) से; **अन्नम्**=भोजन; **आराधि**=तैयार है; **इति**=यों; **आचक्षते**=कहते हैं; (यदि यह अतिथिको) **मुखतः**=मुख्यवृत्तिसे अर्थात् अधिक श्रद्धा, प्रेम और सत्कारपूर्वक; **एतत्**=यह; **राद्धम्**=तैयार किया हुआ; **अन्नम्**=भोजन (देता है तो); **वै**=निश्चय ही; **अस्मै**=इस (दाता) को; **मुखतः**=अधिक आदर-सत्कारके साथ ही; **अन्नम्**=अन्न; **राध्यते**=प्राप्त होता है; (यदि यह अतिथिको) **मध्यतः**=मध्यम श्रेणीकी श्रद्धा और प्रेमसे; **एतत्**=यह; **राद्धम्**=तैयार किया हुआ; **अन्नम्**=भोजन (देता है तो); **वै**=निःसंदेह; **अस्मै**=इस (दाता) को; **मध्यतः**=मध्यम श्रद्धा और प्रेमसे ही; **अन्नम् राध्यते**=अन्न प्राप्त होता है; (और यदि यह अतिथिको) **अन्ततः**=निकृष्ट श्रद्धा-सत्कारसे; **एतत्**=यह; **राद्धम्**=तैयार किया हुआ; **अन्नम्**=भोजन (देता है तो); **वै**=अवश्य ही; **अस्मै**=इस (दाता) को; **अन्ततः**=निकृष्ट श्रद्धा आदिसे; **अन्नम्**=अन्न; **राध्यते**=मिलता है; **यः**=जो; **एवम्**=इस प्रकार; **वेद**=इस रहस्यको जानता है (वह अतिथिके साथ बहुत उत्तम बर्ताव करता है)।

व्याख्या—दसवें अनुवाकके इस अंशमें अतिथि-सेवाका महत्त्व और फल बताया गया है। भाव यह है कि जो मनुष्य अतिथि-सेवाका पूरा लाभ

उठाना चाहे, उसको सबसे पहले तो यह नियम लेना चाहिये कि 'मेरे घरपर जो कोई अतिथि आश्रयकी आशासे पधारेगा, मैं कभी उसको सूखा जवाब देकर निराश नहीं लौटाऊँगा।' '**अतिथिदेवो भव**'—अतिथिकी देवताबुद्धिसे सेवा करो—यह उपदेश गुरुके द्वारा स्नातक शिष्यको पहले ही दिया जा चुका है। इस प्रकारका नियम लेनेपर ही अतिथि-सेवा सम्भव है। यह व्रत लेकर इसका पालन करनेके लिये—केवल अपना तथा कुटुम्बका पोषण करनेके लिये ही नहीं—जिस किसी भी न्यायोचित उपायसे बहुत-से अन्नका उपार्जन करे। धन-सम्पत्ति और अन्नादि, जो शरीरके पालन-पोषणके लिये उपयोगी सामग्री हैं, उन्हें प्राप्त करनेके लिये जितने भी न्यायोचित उपाय बताये गये हैं तथा पूर्वके तीन अनुवाकोंमें भी जो-जो उपाय बताये गये हैं, उनमेंसे किसीके भी द्वारा बहुत-सा अन्न प्राप्त करना चाहिये। अर्थात् अतिथि-सेवाके लिये आवश्यक वस्तुओंका अधिक मात्रामें संग्रह करना चाहिये; क्योंकि अतिथि-सेवा गृहस्थोचित सदाचारका एक अत्यावश्यक अङ्ग है। अच्छे प्रतिष्ठित मनुष्य घरपर आये हुए अतिथिसे यही कहते हैं—'आइये, बैठिये, भोजन तैयार है, भोजन कीजिये' इत्यादि। वे यह कदापि नहीं कहते कि हमारे यहाँ आपकी सेवाके लिये उपयुक्त वस्तुएँ अथवा रहनेका स्थान नहीं है। जो मनुष्य अपने घरपर आये हुए अतिथिकी अधिक आदर-सत्कारपूर्वक उत्तमभावसे विशुद्ध सामग्रियोंद्वारा सेवा करता है—उसे शुद्धतापूर्वक तैयार किया हुआ भोजन देता है, उसको भी उत्तम भावसे ही अन्न प्राप्त होता है अर्थात् उसे भोग्य-पदार्थोंके संग्रह करनेमें कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ता। अतिथि-सेवाके प्रभावसे उसे किसी बातकी कमी नहीं रहती। अनायास उसकी सारी आवश्यकताएँ पूर्ण होती रहती हैं। यदि वह आये हुए अतिथिकी मध्यमभावसे सेवा करता है, साधारण रीतिसे भोजनादि तैयार करके विशेष आदर-सत्कारके बिना ही अतिथिको भोजन आदि कराके उसे सुख पहुँचाता है, तो उसे भी साधारण रीतिसे ही अन्न प्राप्त होता है। अर्थात् अन्न-वस्त्र आदि पदार्थोंका संग्रह करनेमें उसे साधारणतया आवश्यक परिश्रम

करना पड़ता है। जिस भावसे वह अतिथिको देता है, उसी भावसे उतने ही आदर-सत्कारके साथ उसे वे वस्तुएँ मिलती हैं। इसी प्रकार यदि कोई अन्तिम वृत्तिसे अर्थात् बिना किसी प्रकारका आदर-सत्कार किये तुच्छ भावसे भाररूप समझकर अतिथिकी सेवा करता है—उसे निकृष्ट भावसे अश्रद्धापूर्वक तैयार किया हुआ भोजन आदि पदार्थ देता है, तो उसे वे पदार्थ वैसे ही भावसे प्राप्त होते हैं। अर्थात् उनकी प्राप्तिके लिये उसे अधिक-से-अधिक परिश्रम करना पड़ता है, लोगोंकी खुशामद करनी पड़ती है। जो मनुष्य इस प्रकार इस रहस्यको जानता है, वह उत्तम रीतिसे और विशुद्धभावसे अतिथिसेवा करता है; अतः उसे सर्वोत्तम फल, जो पहले तीन अनुवाकोंमें बताया गया है, मिलता है।

सम्बन्ध—*अब परमात्माका विभूतिरूपसे सर्वत्र चिन्तन करनेका प्रकार बताया जाता है—*

क्षेम इति वाचि। योगक्षेम इति प्राणापानयोः। कर्मेति हस्तयोः। गतिरिति पादयोः। विमुक्तिरिति पायौ। इति मानुषीः समाज्ञाः। अथ दैवीः। तृप्तिरिति वृष्टौ। बलमिति विद्युति। यश इति पशुषु। ज्योतिरिति नक्षत्रेषु। प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे। सर्वमित्याकाशे।

[सः परमात्मा]=वह परमात्मा; **वाचि**=वाणीमें; **क्षेमः इति**=रक्षा-शक्तिके रूपसे है; **प्राणापानयोः**=प्राण और अपानमें; **योगक्षेमः इति**=प्राप्ति और रक्षा—दोनों शक्तियोंके रूपमें है; **हस्तयोः**=हाथोंमें; **कर्म इति**=कर्म करनेकी शक्तिके रूपमें है; **पादयोः**=पैरोंमें; **गतिः इति**=चलनेकी शक्तिके रूपमें स्थित है; **पायौ**=गुदामें; **विमुक्तिः इति**=मलत्यागकी शक्ति बनकर है; **इति**=इस प्रकार (ये); **मानुषीः समाज्ञाः**=मानुषी समाज्ञा अर्थात् आध्यात्मिक उपासनाएँ हैं; **अथ**=अब; **दैवीः**=दैवी उपासनाओंका वर्णन करते हैं; (वह परमात्मा) **वृष्टौ**=वृष्टिमें; **तृप्तिः इति**=तृप्ति शक्तिके रूपमें है; **विद्युति**=बिजलीमें; **बलम् इति**=बल (पावर) बनकर स्थित है; **पशुषु**=पशुओंमें; **यशः इति**=यशके रूपमें स्थित है; **नक्षत्रेषु**=ग्रहों और नक्षत्रोंमें; **ज्योतिः इति**=

ज्योतिरूपसे स्थित है; **उपस्थे**=उपस्थमें; **प्रजातिः**=प्रजा उत्पन्न करनेकी शक्ति; **अमृतम्**=वीर्यरूप अमृत (और); **आनन्दः इति**=आनन्द देनेकी शक्तिके रूपमें स्थित है; **आकाशे**=(तथा) आकाशमें; **सर्वम् इति**=सबका आधार बनकर स्थित है।

व्याख्या—दसवें अनुवाकके इस अंशमें परमेश्वरकी विभूतियोंका संक्षेपमें वर्णन किया गया है। भाव यह है कि सत्यरूप वाणीमें आशीर्वादादिके द्वारा जो रक्षा करनेकी शक्ति प्रतीत होती है, उसके रूपमें वहाँ परमात्माकी ही स्थिति है। प्राण और अपानमें जो जीवनोपयोगी वस्तुओंको आकर्षण करनेकी और जीवन-रक्षाकी शक्ति है, वह भी परमात्माका ही अंश है। इसी प्रकार हाथोंमें काम करनेकी शक्ति, पैरोंमें चलनेकी शक्ति और गुदामें मलत्याग करनेकी शक्ति भी परमात्माकी ही हैं। ये सब शक्तियाँ उन परमेश्वरकी शक्तिका ही एक अंश हैं। यह देखकर मनुष्यको परमेश्वरकी सत्तापर विश्वास करना चाहिये। यह मानुषी समाज्ञा बतायी गयी है, अर्थात् मनुष्यके शरीरमें प्रतीत होनेवाली परमात्माकी शक्तियोंका संक्षेपमें दिग्दर्शन कराया गया है। इसीको आध्यात्मिक (शरीर-सम्बन्धी) उपासना भी कह सकते हैं। इसी प्रकार दैवी पदार्थोंमें अभिव्यक्त होनेवाली शक्तिका वर्णन करते हैं। यह दैवी अथवा आधिदैविक उपासना है। वृष्टिमें जो अन्नादिको उत्पन्न करने तथा जल-प्रदानके द्वारा सबको तृप्त करनेकी शक्ति है, बिजलीमें जो बल (पावर) है, पशुओंमें जो स्वामीका यश बढ़ानेकी शक्ति है, नक्षत्रोंमें अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा और तारागणोंमें जो प्रकाश है, उपस्थमें जो संतानोत्पादनकी शक्ति, वीर्यरूप अमृत* और आनन्द देनेकी शक्ति है तथा आकाशमें जो सबको धारण करनेकी और सर्वव्यापकताकी एवं अन्य सब प्रकारकी शक्ति है—ये सब उन परमेश्वरकी अचिन्त्य एवं अपार शक्तिके ही किसी एक अंशकी अभिव्यक्तियाँ हैं। गीतामें भी कहा है कि इस जगत्में जो

* शरीरका रक्षक एवं पोषक तथा जीवनका आधार होनेसे वीर्यको अमृत कहा गया है। इसकी सावधानीके साथ रक्षा करनेसे अमृतत्वकी प्राप्ति भी सम्भव है।

कुछ भी विभूति, शक्ति और शोभासे युक्त है, वह मेरे ही तेजका एक अंश है (गीता १०।४१)। इन सबको देखकर मनुष्यको सर्वत्र एक परमात्माकी व्यापकताका रहस्य समझना चाहिये।

सम्बन्ध—*अब विविध भावनासे की जानेवाली उपासनाका फलसहित वर्णन करते हैं—*

तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत। प्रतिष्ठावान् भवति। तन्मह इत्युपासीत। महान् भवति। तन्मन इत्युपासीत। मानवान् भवति। तन्नम इत्युपासीत। नम्यन्तेऽस्मै कामाः। तद् ब्रह्मेत्युपासीत। ब्रह्मवान् भवति। तद् ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत। पर्येणं म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः। परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः।

तत्=वह (उपास्यदेव); **प्रतिष्ठा**='प्रतिष्ठा' (सबका आधार) है; **इति**=इस प्रकार; **उपासीत**=(उसकी) उपासना करे तो; **प्रतिष्ठावान् भवति**=साधक प्रतिष्ठावाला हो जाता है; **तत्**=वह (उपास्यदेव); **महः**=सबसे महान् है; **इति**=इस प्रकार समझकर; **उपासीत**=उपासना करे तो; **महान्**=महान्; **भवति**=हो जाता है; **तत्**=वह (उपास्यदेव); **मनः**='मन' है; **इति**=इस प्रकार समझकर; **उपासीत**=उसकी उपासना करे तो; (ऐसा उपासक) **मानवान्**=मननशक्तिसे सम्पन्न; **भवति**=हो जाता है; **तत्**=वह (उपास्यदेव); **नमः**='नम' (नमस्कारके योग्य) है; **इति**=इस प्रकार समझकर; **उपासीत**=उसकी उपासना करे तो; **अस्मै**=ऐसे उपासकके लिये; **कामाः**=समस्त काम—भोग पदार्थ; **नम्यन्ते**=विनीत हो जाते हैं; **तत्**=वह (उपास्यदेव); **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **इति**=इस प्रकार समझकर; **उपासीत**=उसकी उपासना करे तो; (ऐसा उपासक) **ब्रह्मवान्**=ब्रह्मसे युक्त; **भवति**=हो जाता है; **तत्**=वह (उपास्यदेव); **ब्रह्मणः**=परमात्माका; **परिमरः**=सबको मारनेके लिये नियत किया हुआ अधिकारी है; **इति**=इस प्रकार समझकर; **उपासीत**=उसकी उपासना करे तो; **एनम् परि**=ऐसे उपासकके प्रति; **द्विषन्तः**=द्वेष रखनेवाले; **सपत्नाः**=शत्रु; **म्रियन्ते**=मर जाते हैं; **ये**=जो; **परि**=(उसका) सब प्रकारसे; **अप्रियाः**

भ्रातृव्याः=अनिष्ट चाहनेवाले अप्रिय बन्धुजन हैं; **[ते अपि म्रियन्ते]**=वे भी मर जाते हैं।

व्याख्या—इस मन्त्रमें सकाम उपासनाका भिन्न-भिन्न फल बताया गया है। भाव यह है कि प्रतिष्ठा चाहनेवाला पुरुष अपने उपास्यदेवकी प्रतिष्ठाके रूपमें उपासना करे, अर्थात् 'वे उपास्यदेव ही सबकी प्रतिष्ठा—सबके आधार हैं' इस भावसे उनका चिन्तन करे। ऐसे उपासककी संसारमें प्रतिष्ठा होती है। महत्त्वकी प्राप्तिके लिये यदि अपने उपास्यदेवको 'महान्' समझकर उनकी उपासना करे तो वह महान् हो जाता है—महत्त्वको प्राप्त कर लेता है। यदि अपने उपास्यदेवको महान् मनस्वी समझकर मनन करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये उनकी उपासना करे तो वह साधक मनन करनेकी विशेष शक्ति प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार जो अपने उपास्यदेवको नमस्कार करनेयोग्य शक्तिशाली समझकर वैसी शक्ति प्राप्त करनेके लिये उनकी उपासना करे, वह स्वयं नमस्कार करनेयोग्य बन जाता है, समस्त कामनाएँ उसके सामने हाथ जोड़कर खड़ी रहती हैं। समस्त भोग अपने-आप उसके चरणोंमें लोटने लगते हैं। अनायास ही उसे समस्त भोग-सामग्री प्राप्त हो जाती है। जो अपने उपास्यदेवको सबसे बड़ा—सर्वाधार ब्रह्म समझकर उन्हींकी प्राप्तिके लिये उनकी उपासना करे, वह ब्रह्मवान् बन जाता है, अर्थात् सर्वशक्तिमान् परमेश्वर उसके अपने बन जाते हैं—उसके वशमें हो जाते हैं। जो अपने उपास्यदेवको ब्रह्मके द्वारा सबका संहार करनेके लिये नियत किया हुआ अधिकारी देवता समझकर उनकी उपासना करता है, उससे द्वेष करनेवाले शत्रु स्वतः नष्ट हो जाते हैं तथा जो उसके अपकारी एवं अप्रिय बन्धुजन होते हैं, वे भी मारे जाते हैं। वास्तवमें किसी भी रूपमें किसी भी उपास्यदेवकी उपासना की जाय, वह प्रकारान्तरसे उन परब्रह्म परमेश्वरकी ही उपासना है, परंतु सकाम मनुष्य अज्ञानवश इस रहस्यको न जाननेके कारण भिन्न-भिन्न शक्तियोंसे युक्त भिन्न-भिन्न देवताओंकी भिन्न-भिन्न कामनाओंकी सिद्धिके लिये उपासना करते हैं, इसलिये वे वास्तविक लाभसे वञ्चित रह जाते हैं (गीता ७।२१, २२,

२३, २४;९ । २२, २३) । अतः मनुष्यको चाहिये कि इस रहस्यको समझकर सब देवोंके देव सर्वशक्तिमान् परमात्माकी उपासना उन्हींकी प्राप्तिके लिये करे, उनसे और कुछ न चाहे ।

सम्बन्ध—*सर्वत्र एक ही परमात्मा परिपूर्ण हैं, इस बातको समझकर उन्हें प्राप्त कर लेनेका फल और प्राप्त करनेवालेकी स्थितिका वर्णन करते हैं—*

स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः । स य एवंवित् । अस्माल्लोकात्प्रेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य इमाँल्लोकान्कामान्नी कामरूप्यनुसंचरन् । एतत्साम गायन्नास्ते ।

सः=वह (परमात्मा); **यः**=जो; **अयम्**=यह; **पुरुषे**=इस मनुष्यमें है; **च**=तथा; **यः**=जो; **असौ**=वह; **आदित्ये च**=सूर्यमें भी है; **सः**=वह (दोनोंका अन्तर्यामी); **एकः**=एक ही है; **यः**=जो (मनुष्य); **एवंवित्**=इस प्रकार तत्त्वसे जाननेवाला है; **सः**=वह; **अस्मात्**=इस; **लोकात्**=लोक (शरीर) से; **प्रेत्य**= उत्क्रमण करके; **एतम्**=इस; **अन्नमयम्**=अन्नमय; **आत्मानम्**=आत्माको; **उपसंक्रम्य**=प्राप्त होकर; **एतम्**=इस; **प्राणमयम्**=प्राणमय; **आत्मानम्**= आत्माको; **उपसंक्रम्य**=प्राप्त होकर; **एतम्**=इस; **मनोमयम्**=मनोमय; **आत्मानम्**=आत्माको; **उपसंक्रम्य**=प्राप्त होकर; **एतम्**=इस; **विज्ञानमयम्**= विज्ञानमय; **आत्मानम्**=आत्माको; **उपसंक्रम्य**=प्राप्त होकर; **एतम्**=इस; **आनन्दमयम्**=आनन्दमय; **आत्मानम्**=आत्माको; **उपसंक्रम्य**=प्राप्त होकर; **कामान्नी**=इच्छानुसार भोगवाला; (और) **कामरूपी**=इच्छानुसार रूपवाला हो जाता है; (तथा) **इमान्**=इन; **लोकान् अनुसंचरन्**=सब लोकोंमें विचरता हुआ; **एतत्**=इस (आगे बताये हुए); **साम गायन्**=साम (समतायुक्त उद्गारों) का गायन करता; **आस्ते**=रहता है ।

व्याख्या—वे परमात्मा, जिनका वर्णन पहले सबकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका कारण कहकर किया जा चुका है और जो परमानन्दस्वरूप हैं, वे इस

पुरुषमें अर्थात् मनुष्योंमें और सूर्यमें एक ही हैं। अभिप्राय यह है कि सम्पूर्ण प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान एक ही परमात्मा है। नाना रूपोंमें उन्हींकी अभिव्यक्ति हो रही है। जो मनुष्य इस तत्त्वको जान लेता है, वह वर्तमान शरीरसे अलग होनेपर उन परमानन्दस्वरूप परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है जिनका वर्णन अन्नमय आत्मा, प्राणमय आत्मा, मनोमय आत्मा, विज्ञानमय आत्मा और आनन्दमय आत्माके नामसे पहले किया गया है। इन सबको पाकर अर्थात् स्थूल और सूक्ष्म भेदसे जो एककी अपेक्षा एकके अन्तरात्मा होकर नाना रूपोंमें स्थित हैं और सबके अन्तर्यामी परमानन्दस्वरूप हैं, उनको प्राप्त करके मनुष्य पर्याप्त भोग-सामग्रीसे युक्त और इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। साथ ही वह इन लोकोंमें विचरता हुआ आगे बताये जानेवाले साम (समतायुक्त भावों) का गान करता रहता है।

सम्बन्ध—*उसके आनन्दमग्न मनमें जो समता और सर्वरूपताके भाव उठा करते हैं, उनका वर्णन करते हैं—*

हा३वु हा३वु हा३वु। अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादो३ऽहमन्नादो३ऽहमन्नादः। अहँ् श्लोककृदहँ् श्लोककृदहँ्-श्लोककृत्। अहमस्मि प्रथमजा ऋता३स्य। पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य ना३भायि। यो मा ददाति स इदेव मा३ वाः। अहमन्नमन्नमदन्त-मा३द्मि। अहं विश्वं भुवनमभ्यभवा३म्। सुवर्ण ज्योतीः। य एवं वेद। इत्युपनिषत्।

हावु हावु हावु=आश्चर्य ! आश्चर्य !! आश्चर्य !!!; **अहम्**=मैं, **अन्नम्**=अन्न हूँ; **अहम्**=मैं; **अन्नम्**=अन्न हूँ; **अहम्**=मैं; **अन्नम्**=अन्न हूँ; **अहम्**=मैं ही; **अन्नादः**=अन्नका भोक्ता हूँ; **अहम्**=मैं ही; **अन्नादः**=अन्नका भोक्ता हूँ; **अहम्**=मैं ही; **अन्नादः**=अन्नका भोक्ता हूँ; **अहम्**=मैं; **श्लोककृत्**=इनका संयोग करानेवाला हूँ; **अहम्**=मैं; **श्लोककृत्**=इनका संयोग करानेवाला हूँ; **अहम्**=मैं; **श्लोककृत्**=इनका संयोग करानेवाला हूँ; **अहम्**=मैं; **ऋतस्य**=सत्यका अर्थात् प्रत्यक्ष दीखनेवाले जगत्की अपेक्षासे; **प्रथमजा**=सबमें प्रधान होकर

उत्पन्न होनेवाला (हिरण्यगर्भ); **[च]**=और; **देवेभ्यः**=देवताओंसे भी; **पूर्वम्**=पहले विद्यमान; **अमृतस्य**=अमृतका; **नाभायि (नाभि)**=केन्द्र; **अस्मि**=हूँ; **यः**=जो कोई; **मा**=मुझे; **ददाति**=देता है; **सः**=वह; **इत्**=इस कार्यसे; **एव**=ही; **मा आवाः**=मेरी रक्षा करता है; **अहम्**=मैं; **अन्नम्**=अन्नस्वरूप होकर; **अन्नम्**=अन्न; **अदन्तम्**=खानेवालेको; **अद्मि**=निगल जाता हूँ; **अहम्**=मैं; **विश्वम्**=समस्त; **भुवनम् अभ्यभवाम्**=ब्रह्माण्डका तिरस्कार करता हूँ; **सुवः न ज्योतिः**=मेरे प्रकाशकी एक झलक सूर्यके समान है; **यः**=जो; **एवम्**=इस प्रकार; **वेद**=जानता है (उसे भी यही स्थिति प्राप्त होती है); **इति**=इस प्रकार; **उपनिषत्**=यह उपनिषद्—ब्रह्मविद्या समाप्त हुई।

व्याख्या—उस महापुरुषकी स्थिति शरीरमें नहीं रहती। वह शरीरसे सर्वथा ऊपर उठकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है। यह बात पहले कहकर उसके बाद इस साम-गानका वर्णन किया गया है। इससे यह प्रकट होता है कि परमात्माके साथ एकताकी प्राप्ति कर लेनेवाले महापुरुषके ये पावन उद्गार उसके विशुद्ध अन्तःकरणसे निकले हैं और उसकी अलौकिक महिमा सूचित करते हैं। 'हावु' पद आश्चर्यबोधक अव्यय है। वह महापुरुष कहता है—बड़े आश्चर्यकी बात है ! वे सम्पूर्ण भोग-वस्तुएँ, इनको भोगनेवाला जीवात्मा और इन दोनोंका संयोग करानेवाला परमेश्वर एक मैं ही हूँ। मैं ही इस प्रत्यक्ष दीखनेवाले जगत्में समस्त देवताओंसे पहले सबमें प्रधान होकर प्रकट होनेवाला ब्रह्मा हूँ; और परमानन्दरूप अमृतके केन्द्र परब्रह्म परमेश्वर भी मुझसे अभिन्न हैं, अतः वे भी मैं ही हूँ। जो कोई मनुष्य किसी भी वस्तुके रूपमें मुझे किसीको प्रदान करता है, वह मानो मुझे देकर मेरी रक्षा करता है। अर्थात् योग्य पात्रमें भोग्य पदार्थोंका दान ही उनकी रक्षाका सर्वोत्तम उपाय है। इसके विपरीत जो अपने ही लिये अन्नरूप समस्त भोगोंका उपभोग करता है, उस खानेवालेको मैं अन्नरूप होकर निगल जाता हूँ। अर्थात् उसका विनाश हो जाता है—उसकी भोग-सामग्री टिकती नहीं। मैं समस्त ब्रह्माण्डका तिरस्कार करनेवाला हूँ। मेरी महिमाकी तुलनामें यह सब तुच्छ है।

मेरे प्रकाशकी एक झलक भी सूर्यके समान है। अर्थात् जगत्में जितने भी प्रकाशयुक्त पदार्थ हैं, वे सब मेरे ही तेजके अंश हैं। जो कोई इस प्रकार परमात्माके तत्त्वको जानता है, वह भी इसी स्थितिको प्राप्त कर लेता है। उपर्युक्त कथन परमात्मामें एकीभावसे स्थित होकर परमात्माकी दृष्टिसे है, यह समझना चाहिये।

॥ दशम अनुवाक समाप्त ॥ १० ॥

॥ भृगुवल्ली समाप्त ॥ ३ ॥



॥ कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद् समाप्त ॥



शान्तिपाठ

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः।* नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। आवीद्वक्तारम्॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

इसका अर्थ शीक्षावल्लीके द्वादश अनुवाकमें दिया गया है।



* यह मन्त्र ऋग्वेद १।९०।९, यजुर्वेद ३६।९ में आया है।

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

ॐ=पूर्णब्रह्म परमात्मन्; (आप) **नौ**=हम दोनों (गुरु-शिष्य) की; **सह**=साथ-साथ; **अवतु**=रक्षा करें; **नौ**=हम दोनोंका; **सह**=साथ-साथ; **भुनक्तु**=पालन करें; **सह**=(हम दोनों) साथ-साथ ही; **वीर्यम्**=शक्ति; **करवावहै**=प्राप्त करें; **नौ**=हम दोनोंकी; **अधीतम्**=पढ़ी हुई विद्या; **तेजस्वि**=तेजोमयी; **अस्तु**=हो; **मा विद्विषावहै**=हम दोनों परस्पर द्वेष न करें।

व्याख्या—हे परमात्मन्! आप हम गुरु-शिष्य दोनोंकी साथ-साथ सब प्रकारसे रक्षा करें, हम दोनोंका आप साथ-साथ समुचितरूपसे पालन-पोषण करें, हम दोनों साथ-ही-साथ सब प्रकारसे बल प्राप्त करें, हम दोनोंकी अध्ययन की हुई विद्या तेजपूर्ण हो—कहीं किसीसे हम विद्यामें परास्त न हों और हम दोनों जीवनभर परस्पर स्नेह-सूत्रसे बँधे रहें, हमारे अन्दर परस्पर या अन्य किसीसे कभी द्वेष न हो। हे परमात्मन्! तीनों तापोंकी निवृत्ति हो।

प्रथम अध्याय

हरिः ॐ ब्रह्मवादिनो वदन्ति—
किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु
वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्॥ १॥

'हरिः ओम्' इस प्रकार परमात्माके नामका उच्चारण करके उस परब्रह्म परमेश्वरका स्मरण करते हुए यह उपनिषद् आरम्भ की जाती है—

ब्रह्मवादिनः=ब्रह्मविषयक चर्चा करनेवाले कुछ जिज्ञासु; **वदन्ति**=आपसमें कहते हैं; **ब्रह्मविदः**=हे वेदज्ञ महर्षियो !; **कारणम्**=इस जगत्का मुख्य कारण; **ब्रह्म**=ब्रह्म; **किम्**=कौन है; **कुतः**=(हमलोग) किससे; **जाताः स्म**=उत्पन्न हुए हैं; **केन**=किससे; **जीवाम**=जी रहे हैं; **च**=और; **क्व**=किसमें; **सम्प्रतिष्ठाः**=हमारी सम्यक् प्रकारसे स्थिति है; (तथा) **केन अधिष्ठिताः**=किसके अधीन रहकर; **[वयम्]**=हमलोग; **सुखेतरेषु**=सुख और दुःखोंमें; **व्यवस्थाम्**=निश्चित व्यवस्थाके अनुसार; **वर्तामहे**=बर्त रहे हैं ॥ १ ॥

व्याख्या—परब्रह्म परमात्माको जानने और प्राप्त करनेके लिये उनकी चर्चा करनेवाले कुछ जिज्ञासु पुरुष आपसमें कहने लगे—'हे वेदज्ञ महर्षिगण ! हमने वेदोंमें पढ़ा है कि इस समस्त जगत्के कारण ब्रह्म हैं; सो वे ब्रह्म कौन हैं ! हम सब लोग किससे उत्पन्न हुए हैं—हमारा मूल क्या है ? किसके प्रभावसे हम जी रहे हैं—हमारे जीवनका आधार कौन है ? और हमारी पूर्णतया स्थिति किसमें है ? अर्थात् हम उत्पन्न होनेसे पहले—भूतकालमें उत्पन्न होनेके बाद—वर्तमानकालमें और इसके पश्चात्—प्रलयकालमें किसमें स्थित रहते हैं ? हमारा परम आश्रय कौन है ? तथा हमारा अधिष्ठाता—हमलोगोंकी व्यवस्था करनेवाला कौन है ? जिसकी रची हुई व्यवस्थाके अनुसार हमलोग सुख-दुःख दोनों भोग रहे हैं, वह इस सम्पूर्ण जगत्की सुव्यवस्था करनेवाला इसका संचालक स्वामी कौन है ?'* ॥ १ ॥

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा
भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या ।

---

* इस प्रकार परब्रह्म परमात्माकी खोज करना; उन्हें जानने और पानेके लिये उत्कट अभिलाषाके साथ उत्साहपूर्वक आपसमें विचार करना, परमात्माके सत्त्वको जाननेवाले महापुरुषोंसे उनके विषयमें विनयभाव और श्रद्धापूर्वक पूछना, उनकी बतायी हुई बातोंको ध्यानपूर्वक सुनकर काममें लाना—इसीका नाम 'सत्सङ्ग' है। इस उपनिषद्के प्रथम मन्त्रमें सत्सङ्गका ही वर्णन है। इससे सत्सङ्गकी अनादिता और अलौकिक महत्ता सूचित होती है।

संयोग एषां न त्वात्मभावा-
दात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥ २ ॥

(क्या) **कालः**=काल; **स्वभावः**=स्वभाव; **नियतिः**=निश्चित फल देनेवाला कर्म; **यदृच्छा**=आकस्मिक घटना; **भूतानि**=पाँचों महाभूत; (या) **पुरुषः**=जीवात्मा; **योनिः**=कारण है; **इति चिन्त्या**=इसपर विचार करना चाहिये; **एषाम्**=इन काल आदिका; **संयोगः**=समुदाय; **तु**=भी; **न**=इस जगत्का कारण नहीं हो सकता; **आत्मभावात्**=क्योंकि वे चेतन आत्माके अधीन हैं (जड होनेके कारण स्वतन्त्र नहीं हैं); **आत्मा**=जीवात्मा; **अपि**=भी; **[न]**=इस जगत्का कारण नहीं हो सकता; **सुखदुःखहेतोः**=(क्योंकि वह) सुख-दुःखोंके हेतुभूत प्रारब्धके; **अनीशः**=अधीन है, स्वतन्त्र नहीं है ॥ २ ॥

व्याख्या—वे कहने लगे कि वेद-शास्त्रोंमें अनेक कारणोंका वर्णन आता है। कहीं तो कालको कारण बताया है; क्योंकि किसी-न-किसी समयपर ही वस्तुओंकी उत्पत्ति देखी जाती है, जगत्की रचना और प्रलय भी कालके ही अधीन सुने जाते हैं। कहीं स्वभावको कारण बताया जाता है; क्योंकि बीजके अनुरूप ही वृक्षकी उत्पत्ति होती है—जिस वस्तुमें जो स्वाभाविक शक्ति है, उसीसे उसका कार्य उत्पन्न होता देखा जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि वस्तुगत शक्तिरूप जो स्वभाव है, वह कारण है। कहीं कर्मको कारण बताया है; क्योंकि कर्मानुसार ही जीव भिन्न-भिन्न योनियोंमें भिन्न-भिन्न स्वभाव आदिसे युक्त होकर उत्पन्न होते हैं। कहीं आकस्मिक घटनाको अर्थात् होनहार (भवितव्यता)को कारण बताया है। कहीं पाँचों महाभूतोंको और कहीं जीवात्माको जगत्का कारण बताया गया है। अतः हमलोगोंको विचार करना चाहिये कि वास्तवमें कारण कौन है। विचार करनेसे समझमें आता है कि कालसे लेकर पञ्चमहाभूतोंतक बताये हुए जड पदार्थोंमेंसे कोई भी जगत्का कारण नहीं है। वे अलग-अलग तो क्या, सब मिलकर भी जगत्के कारण नहीं हो सकते; क्योंकि ये सब जड होनेके कारण चेतनके अधीन हैं, इसमें स्वतन्त्र कार्य करनेकी शक्ति नहीं है। जिन जड वस्तुओंके मेलसे कोई नयी चीज उत्पन्न

होती है, वह उसके संचालक चेतन आत्माके ही अधीन और उसीके भोगार्थ होती है। इनके सिवा पुरुष अर्थात् जीवात्मा भी जगत्का कारण नहीं हो सकता; क्योंकि वह सुख-दुःखके हेतुभूत प्रारब्धके अधीन है, वह भी स्वतन्त्ररूपसे कुछ नहीं कर सकता। अतः कारण-तत्त्व कुछ और ही है॥ २॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार विचार करके उन्होंने क्या निर्णय किया, इस जिज्ञासापर कहा जाता है—*

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि
कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥ ३ ॥

ते=उन्होंने; **ध्यानयोगानुगताः**=ध्यानयोगमें स्थित होकर; **स्वगुणैः**=अपने गुणोंसे; **निगूढाम्**=ढकी हुई; **देवात्मशक्तिम् अपश्यन्**=(उन) परमात्मदेवकी स्वरूपभूत अचिन्त्यशक्तिका साक्षात्कार किया; **यः**=जो (परमात्मदेव); **एकः**=अकेला ही; **तानि**=उन; **कालात्मयुक्तानि**=कालसे लेकर आत्मातक (पहले बताये हुए); **निखिलानि**=सम्पूर्ण; **कारणानि अधितिष्ठति**=कारणोंपर शासन करता है॥ ३॥

व्याख्या—इस प्रकार आपसमें विचार करनेपर जब युक्तियोंद्वारा और अनुमानसे वे किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सके, तब वे सब ध्यान-योगमें स्थित हो गये अर्थात् अपने मन और इन्द्रियोंको बाहरके विषयोंसे हटाकर परब्रह्मको जाननेके लिये उन्हींका चिन्तन करनेमें तत्पर हो गये। ध्यान करते-करते उन्हें परमात्माकी महिमाका अनुभव हुआ। उन्होंने उन परमदेव परब्रह्म पुरुषोत्तमकी स्वरूपभूत अचिन्त्य दिव्य शक्तिका साक्षात्कार किया, जो अपने ही गुणोंसे—सत्त्व, रज, तमसे ढकी है, अर्थात् जो देखनेमें त्रिगुणमयी प्रतीत होती है, परंतु वास्तवमें तीनों गुणोंसे परे है। तब वे इस निर्णयपर पहुँचे कि कालसे लेकर आत्मातक जितने कारण पहले बताये गये हैं, उन समस्त कारणोंके जो अधिष्ठाता—स्वामी हैं, अर्थात् वे सब जिनकी

आज्ञा और प्रेरणा पाकर, जिनकी उस शक्तिके किसी एक अंशको लेकर अपने-अपने कार्योंके करनेमें समर्थ होते हैं, वे एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही इस जगत्के वास्तविक कारण हैं, दूसरा कोई नहीं है ॥ ३ ॥

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं
शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः ।
अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं
त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम् ॥ ४ ॥

तम्=उस; **एकनेमिम्**=एक नेमिवाले; **त्रिवृतम्**=तीन घेरोंवाले; **षोडशान्तम्**=सोलह सिरोंवाले; **शतार्धारम्**=पचास अरोंवाले; **विंशतिप्रत्यराभिः**=बीस सहायक अरोंसे; (तथा) **षड्भिः अष्टकैः**=छः अष्टकोंसे; **[युक्तम्]**=युक्त; **विश्वरूपैकपाशम्**=अनेक रूपोंवाले एक ही पाशसे युक्त; **त्रिमार्गभेदम्**=मार्गके तीन भेदोंवाले; (तथा) **द्विनिमित्तैकमोहम्**=दो निमित्त और मोहरूपी एक नाभिवाले (चक्रको); **[अपश्यन्]**=उन्होंने देखा ॥ ४ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें विश्वका चक्रके रूपमें वर्णन किया गया है। भाव यह कि परमदेव परमेश्वरकी स्वरूपभूता अचिन्त्यशक्तिका दर्शन करनेवाले वे ऋषिलोग कहते हैं—हमने एक ऐसे चक्रको देखा है, जिसमें एक नेमि है। नेमि उस गोल घेरेको कहते हैं, जो चक्रके अरों और नाभि आदि सब अवयवोंको वेष्टित किये रहती है तथा यथास्थान बनाये रखती है। यहाँ अव्याकृत प्रकृतिको ही 'नेमि' कहा गया है; क्योंकि वही इस व्यक्त जगत्का मूल अथवा आधार है। जिस प्रकार चक्केकी रक्षाके लिये उस नेमिके ऊपर लोहेका घेरा (हाल) चढ़ा रहता है, उसी प्रकार इस संसार-चक्रकी अव्याकृत-प्रकृतिरूप नेमिके ऊपर सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण ही तीन घेरे हैं। यह पहले ही कह आये हैं कि भगवान्की वह अचिन्त्यशक्ति तीन गुणोंसे ढकी है। जिस प्रकार चक्केकी नेमि अलग-अलग सिरोंके जोड़से बनती है, उसी प्रकार संसाररूप चक्रकी प्रकृतिरूप नेमिके मन, बुद्धि और अहंकार तथा आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये आठ सूक्ष्म तत्त्व

और इनके ही आठ स्थूल रूप—इस प्रकार सोलह सिरे हैं। जिस प्रकार चक्रमें अरे लगे रहते हैं, जो एक ओरसे नेमिके टुकड़ोंमें जुड़े रहते हैं और दूसरी ओरसे चक्केकी नाभिमें जुड़े होते हैं, उसी प्रकार इस संसार-चक्रमें अन्तःकरणकी वृत्तियोंके पचास भेद तो पचास अरोंकी जगह हैं और पाँच महाभूतोंके कार्य—दस इन्द्रियाँ, पाँच विषय और पाँच प्राण—ये बीस सहायक अरोंकी जगह हैं। इस चक्केमें आठ-आठ चीजोंके* छः समूह अङ्गरूपमें विद्यमान हैं। इन्हींको छः अष्टकोंके नामसे कहा गया है। जीवोंको इस चक्रमें बाँधकर रखनेवाली अनेक रूपोंमें प्रकट आसक्तिरूप एक फाँसी है। देवयान, पितृयान और इसी लोकमें एक योनिसे दूसरी योनिमें जानेका मार्ग—इस प्रकार ये तीन मार्ग हैं। पुण्यकर्म और पापकर्म—ये दो इस

---

* यहाँ 'अष्टक' शब्दसे क्या अभिप्राय है, ठीक-ठीक पता नहीं चलता। चक्कोंमें भी 'अष्टक' नामका कोई अङ्ग होता है या नहीं और यदि होता है तो उसका क्या स्वरूप होता है तथा उसे अष्टक क्यों कहते हैं—इसका भी कोई पता नहीं चलता। शाङ्करभाष्यमें भी 'अष्टक' किसे कहते हैं—यह खोलकर नहीं बताया गया। इसीलिये छः अष्टकोंकी व्याख्या नहीं की जा सकती। शाङ्करभाष्यके अनुसार छः अष्टक इस प्रकार हैं—

(१) गीता (७।४)में उल्लिखित आठ प्रकारकी प्रकृति अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार;

(२) शरीरगत आठ धातुएँ अर्थात् त्वचा, चमड़ी, मांस, रक्त, मेद, हड्डी, मज्जा और वीर्य;

(३) अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व—ये आठ प्रकारके ऐश्वर्य;

(४) धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य (राग) और अनैश्वर्य—ये आठ भाव;

(५) ब्रह्मा, प्रजापति, देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर और पिशाच—ये आठ प्रकारकी देवयोनियाँ;

(६) समस्त प्राणियोंके प्रति दया, क्षमा, अनसूया (निन्दा न करना) शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), अनायास, मङ्गल, अकृपणता (उदारता) और अस्पृहा—ये आत्माके आठ गुण;

जीवको इस चक्रके साथ-साथ घुमानेमें निमित्त हैं और जिसमें अरे टँगे रहते हैं, उस नाभिके स्थानमें अज्ञान है। जिस प्रकार नाभि ही चक्रेका केन्द्र है, उसी प्रकार अज्ञान इस जगत्का केन्द्र है॥ ४॥

पञ्चस्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां
पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्।
पञ्चावर्तां पञ्चदुःखौघवेगां
पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः॥ ५॥

पञ्चस्रोतोऽम्बुम्=पाँच स्रोतोंसे आनेवाले विषयरूप जलसे युक्त; **पञ्चयोन्युग्रवक्राम्**=पाँच स्थानोंसे उत्पन्न होकर भयानक और टेढ़ी-मेढ़ी चालसे चलनेवाली; **पञ्चप्राणोर्मिम्**=पाँच प्राणरूप तरङ्गोंवाली; **पञ्चबुद्ध्यादि-मूलाम्**=पाँच प्रकारके ज्ञानका आदि कारण मन ही है मूल जिसका; **पञ्चावर्ताम्**=पाँच भँवरोंवाली; **पञ्चदुःखौघवेगाम्**=पाँच दुःखरूप प्रवाहके वेगसे युक्त; **पञ्चपर्वाम्**=पाँच पर्वोंवाली; (और) **पञ्चाशद्भेदाम्**=पचास भेदोंवाली (नदीको); **अधीमः**=हमलोग जानते हैं॥ ५॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें संसारका नदीके रूपमें वर्णन किया गया है। वे ब्रह्मज्ञ ऋषि कहते हैं—हम एक ऐसी नदीको देख रहे हैं, जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ही पाँच स्रोत हैं। संसारका ज्ञान हमें पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा ही होता है, इन्हींमेंसे होकर संसारका प्रवाह बहता है। इसीलिये इन्द्रियोंको यहाँ स्रोत कहा गया है। ये इन्द्रियाँ पञ्च सूक्ष्मभूतों (तन्मात्रों) से उत्पन्न हुई हैं, इसीलिये इस नदीके पाँच उद्गम-स्थान माने गये हैं। इस नदीका प्रवाह बड़ा ही भयंकर है। इसमें गिर जानेसे बार-बार जन्म-मृत्युका क्लेश उठाना पड़ता है। संसारकी चाल बड़ी टेढ़ी है, कपटसे भरी है। इसमेंसे निकलना कठिन है। इसीलिये इस संसाररूप नदीको वक्र कहा गया है। जगत्के जीवोंमें जो कुछ भी चेष्टा— हलचल होती है, वह प्राणोंके द्वारा ही होती है। इसीलिये प्राणोंको इस भव-सरिताकी तरङ्गमाला कहा गया है। नदीमें हलचल तरङ्गोंसे ही होती है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा होनेवाले चाक्षुष आदि पाँच प्रकारके ज्ञानोंका

आदि कारण मन है, जितने भी ज्ञान हैं, सब मनकी ही तो वृत्तियाँ हैं। मन न हो तो इन्द्रियोंके सचेष्ट रहनेपर भी किसी प्रकारका ज्ञान नहीं होता। यह मन ही संसाररूप नदीका मूल है। मनसे ही संसारकी सृष्टि होती है। सारा जगत् मनकी ही कल्पना है। मनके अमन हो जानेपर—नाश हो जानेपर जगत्का अस्तित्व इस रूपमें नहीं रहता। जबतक मन है, तभीतक संसारचक्र है। इन्द्रियोंके शब्द, स्पर्श आदि पाँच विषय ही इस संसाररूप नदीमें आवर्त अर्थात् भँवर हैं। इन्हींमें फँसकर जीव जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़ जाता है। गर्भका दुःख, जन्मका दुःख, बुढ़ापेका दुःख, रोगका दुःख और मृत्युका दुःख—ये पाँच प्रकारके दुःख ही इस नदीके प्रवाहमें वेगरूप हैं। इन्हींके थपेड़ोंसे जीव व्याकुल रहता है और इस योनिसे उस योनिमें भटकता रहता है। अविद्या (अज्ञान), अस्मिता (अहंकार), राग (प्रिय-बुद्धि), द्वेष (अप्रियबुद्धि) और अभिनिवेश (मृत्युभय)—ये पञ्चविध क्लेश ही इस संसाररूप नदीके पाँच पर्व अर्थात् विभाग हैं। इन्हीं पाँच विभागोंमें यह जगत् बँटा हुआ है। इन पाँचोंका समुदाय ही संसारका स्वरूप है और अन्तःकरणकी पचास वृत्तियाँ ही इस नदीके पचास भेद अर्थात् भिन्न-भिन्न रूप हैं। अन्तःकरणकी वृत्तियोंको लेकर ही संसारमें भेदकी प्रतीति होती है॥ ५॥

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते
अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा
जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥ ६ ॥

अस्मिन्=इस; **सर्वाजीवे**=सबके जीविकारूप; **सर्वसंस्थे**=सबके आश्रयभूत; **बृहन्ते**=विस्तृत; **ब्रह्मचक्रे**=ब्रह्मचक्रमें; **हंसः**=जीवात्मा; **भ्राम्यते**=घुमाया जाता है; **[सः]**=वह; **आत्मानम्**=अपने-आपको; **च**=और; **प्रेरितारम्**=सबके प्रेरक परमात्माको; **पृथक्**=अलग-अलग, **मत्वा**=जानकर; **ततः**=उसके बाद; **तेन**=उस परमात्मासे; **जुष्टः**=स्वीकृत होकर; **अमृतत्वम्**=अमृतभावको; **एति**=प्राप्त हो जाता है॥ ६॥

व्याख्या—जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है, जो सबके जीवन-निर्वाहका हेतु है और जो समस्त प्राणियोंका आश्रय है, ऐसे इस जगत्-रूप ब्रह्मचक्रमें अर्थात् परब्रह्म परमात्माद्वारा संचालित तथा परमात्माके ही विराट् शरीररूप संसारचक्रमें यह जीवात्मा अपने कर्मोंके अनुसार उन परमात्माद्वारा घुमाया जाता है। जबतक यह इसके संचालकको जानकर उनका कृपापात्र नहीं बन जाता, अपनेको उनका प्रिय नहीं बना लेता, तबतक इसका इस चक्रसे छुटकारा नहीं हो सकता। जब यह अपनेको और सबके प्रेरक परमात्माको भलीभाँति पृथक्-पृथक् समझ लेता है कि उन्हींके घुमानेसे मैं इस संसारचक्रमें घूम रहा हूँ और उन्हींकी कृपासे छूट सकता हूँ, तब वह उन परमेश्वरका प्रिय बनकर उनके द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है (कठ० १। २। २३; मुण्डक० ३। २। ३)। फिर तो वह अमृतभावको प्राप्त हो जाता है, जन्म-मरणरूप संसारचक्रसे सदाके लिये छूट जाता है। परम शान्ति एवं सनातन दिव्य परमधामको प्राप्त हो जाता है (गीता १८। ६१-६२) ॥ ६ ॥

उद्गीतमेतत् परमं तु ब्रह्म
तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा
लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ॥ ७ ॥

एतत्=यह; **उद्गीतम्**=वेदवर्णित; **परमम् ब्रह्म**=परब्रह्म; **तु**=ही; **सुप्रतिष्ठा**=सर्वश्रेष्ठ आश्रय; **च**=और; **अक्षरम्**=अविनाशी है; **तस्मिन्**=उसमें; **त्रयम्**=तीनों लोक स्थित हैं; **ब्रह्मविदः**=वेदके तत्त्वको जाननेवाले महापुरुष; **अत्र**=यहाँ (हृदयमें); **अन्तरम्**=अन्तर्यामीरूपसे स्थित उस ब्रह्मको; **विदित्वा**=जानकर; **तत्पराः**=उसीके परायण हो; **ब्रह्मणि**=उस परब्रह्ममें; **लीनाः**=लीन होकर; **योनिमुक्ताः**=सदाके लिये जन्म-मृत्युसे मुक्त हो गये ॥ ७ ॥

व्याख्या—जिनकी महिमाका वेदोंमें गान किया गया है, जो परब्रह्म परमात्मा सबके सर्वोत्तम आश्रय हैं, उन्हींमें तीनों लोकोंका समुदायरूप समस्त विश्व स्थित है। वे ही ऊपर बताये हुए सबके प्रेरक, कभी नाश न होनेवाले

परम अक्षर, परम देव हैं। जिन्होंने ध्यानयोगमें स्थित होकर परमात्माकी दिव्यशक्तिका दर्शन किया था, वे वेदके रहस्यको समझनेवाले ऋषिलोग उन सबके प्रेरक परमात्माको यहाँ—अपने हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान समझकर, उन्हींके परायण होकर अर्थात् सर्वतोभावसे उनकी शरणमें जाकर, उन्हींमें लीन हो गये और सदाके लिये जन्म-मरणरूप योनिसे मुक्त हो गये। उनके मार्गका अनुसरण करके हम सब लोग भी उन्हींकी भाँति जन्म-मरणसे छूटकर परमात्मामें लीन हो सकते हैं॥ ७॥

सम्बन्ध—*अब उन परमात्माके स्वरूपका वर्णन करके उन्हें जाननेका फल बताया जाता है—*

संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च
व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावा-
ज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ ८॥

क्षरम्=विनाशशील जडवर्ग; **च**=एवं; **अक्षरम्**=अविनाशी जीवात्मा; **संयुक्तम्**=(इन दोनोंके) संयोगसे बने हुए; **व्यक्ताव्यक्तम्**=व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप; **एतत् विश्वम्**=इस विश्वको; **ईशः**=परमेश्वर ही; **भरते**=धारण और पोषण करता है; **च**=तथा; **आत्मा**=जीवात्मा; **भोक्तृभावात्**=इस जगत्के विषयोंका भोक्ता बना रहनेके कारण; **अनीशः**=प्रकृतिके अधीन असमर्थ हो; **बध्यते**=इसमें बँध जाता है; (और) **देवम्**=उस परमदेव परमेश्वरको; **ज्ञात्वा**=जानकर; **सर्वपाशैः**=सब प्रकारके बन्धनोंसे; **मुच्यते**=मुक्त हो जाता है॥ ८॥

व्याख्या—विनाशशील जडवर्ग जिसे भगवान्‌की अपरा प्रकृति तथा क्षरतत्त्व कहा गया है और भगवान्‌की परा प्रकृतिरूप जीवसमुदाय, जो अक्षरतत्त्वके नामसे पुकारा जाता है—इन दोनोंके संयोगसे बने हुए, प्रकट (स्थूल) और अप्रकट (सूक्ष्म) रूपमें स्थित इस समस्त जगत्‌का वे परमपुरुष पुरुषोत्तम ही धारण-पोषण करते हैं, जो सबके स्वामी, सबके प्रेरक तथा सबका यथायोग्य संचालन और नियमन करनेवाले परमेश्वर हैं। जीवात्मा इस जगत्‌के

विषयोंका भोक्ता बना रहनेके कारण प्रकृतिके अधीन हो इसके मोहजालमें फँसा रहता है, उन परमदेव परमात्माकी ओर दृष्टिपात नहीं करता। जब कभी यह उन सर्वसुहृद् परमात्माकी अहैतुकी दयासे महापुरुषोंका सङ्ग पाकर उनको जाननेका अभिलाषी होकर पूर्ण चेष्टा करता है, तब उन परमदेव परमेश्वरको जानकर सब प्रकारके बन्धनोंसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है॥ ८॥

सम्बन्ध—*पुनः जीवात्मा, परमात्मा और प्रकृति—इन तीनोंके स्वरूपका पृथक्-पृथक् वर्णन करके, इस तत्त्वको जानकर उपासना करनेका फल दो मन्त्रोंद्वारा बताया जाता है—*

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशा-
वजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता
त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥ ९॥

ज्ञाज्ञौ=सर्वज्ञ और अज्ञानी; **ईशनीशौ**=सर्वसमर्थ और असमर्थ; **द्वौ**=ये दो; **अजौ**=अजन्मा आत्मा हैं; **हि**=तथा इनके सिवा; **भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता**=भोगनेवाले जीवात्माके लिये उपयुक्त भोग्य-सामग्रीसे युक्त; **अजा**=अनादि प्रकृति; **एका**=एक तीसरी शक्ति है; (इन तीनोंमें जो ईश्वरतत्त्व है, वह शेष दोसे विलक्षण है) **हि**=क्योंकि; **आत्मा**=वह परमात्मा; **अनन्तः**=अनन्त; **विश्वरूपः**=सम्पूर्ण रूपोंवाला; **च**=और; **अकर्ता**=कर्तापनके अभिमानसे रहित है; **यदा**=जब; (मनुष्य इस प्रकार) **एतत् त्रयम्**=ईश्वर, जीव और प्रकृति—इन तीनोंको; **ब्रह्मम्**=ब्रह्मरूपमें; **विन्दते**=प्राप्त कर लेता है (तब वह सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है)॥ ९॥

व्याख्या—ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं, जीव अल्पज्ञ और अल्प शक्तिवाला है; ये दोनों ही अजन्मा हैं। इनके सिवा एक तीसरी शक्ति भी अजन्मा है जिसे प्रकृति कहते हैं; यह भोक्ता जीवात्माके लिये उपयुक्त भोग-सामग्री प्रस्तुत करती है। यद्यपि ये तीनों ही अजन्मा हैं—अनादि हैं, फिर भी ईश्वर शेष दो तत्त्वोंसे विलक्षण हैं; क्योंकि वे परमात्मा अनन्त हैं। (गीता १५। १६-१७) सम्पूर्ण विश्व उन्हींका स्वरूप—विराट् शरीर है। वे

सब कुछ करते हुए—सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हुए भी वास्तवमें कुछ नहीं करते; क्योंकि वे कर्तापनके अभिमानसे रहित हैं। (गीता ४। १३) मनुष्य जब इस प्रकार इन तीनोंकी विलक्षणता और विभिन्नताको समझते हुए ही इन्हें ब्रह्मरूपमें उपलब्ध कर लेता है अर्थात् प्रकृति और जीव तो उन परमेश्वरकी प्रकृतियाँ हैं और परमेश्वर इनके स्वामी हैं—इस प्रकार प्रत्यक्ष कर लेता है, तब वह सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है॥ ९॥

सम्बन्ध—*पहले, आठवें और नवें मन्त्रमें कहे हुए तीनों तत्त्वोंका स्पष्टीकरण अगले मन्त्रमें किया जाता है*—

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः
क्षरात्मानावीशते देव एकः।
तस्याभिध्यानाद् योजनात् तत्त्वभावाद्
भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः॥ १०॥

प्रधानम्=प्रकृति तो; **क्षरम्**=विनाशशील है; **हरः**=इनको भोगनेवाला जीवात्मा; **अमृताक्षरम्**=अमृतस्वरूप अविनाशी है; **क्षरात्मानौ**=इन विनाशशील जड-तत्त्व और चेतन आत्मा—दोनोंको; **एकः**=एक; **देवः**=ईश्वर; **ईशते**=अपने शासनमें रखता है; (इस प्रकार जानकर) **तस्य**= उसका; **अभिध्यानात्**=निरन्तर ध्यान करनेसे; **योजनात्**=मनको उसमें लगाये रहनेसे; **च**=तथा; **तत्त्वभावात्**= तन्मय हो जानेसे; **अन्ते**=अन्तमें (उसीको प्राप्त हो जाता है); **भूयः**=फिर; **विश्वमायानिवृत्तिः**=समस्त मायाकी निवृत्ति हो जाती है॥ १०॥

व्याख्या—प्रकृति तो क्षर अर्थात् परिवर्तन होनेवाली, विनाशशील है और इसको भोगनेवाला जीव-समुदाय अविनाशी अक्षरतत्त्व है। (गीता ७। ४-५; १५। १६) इन क्षर और अक्षर (जडप्रकृति और चेतन जीव-समुदाय)—दोनों तत्त्वोंपर एक परमदेव परमेश्वर शासन करते हैं, (गीता १५। १७) वे ही प्राप्त करनेके और जाननेके योग्य हैं, उन्हें तत्त्वोंसे जानना चाहिये—इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके उन परमदेव परमात्माका निरन्तर ध्यान करनेसे, उन्हींमें रात-दिन संलग्न रहनेसे और उन्हींमें तन्मय हो जानेसे अन्तमें यह

उन्हींको पा लेता है। फिर इसके सम्पूर्ण मायाकी सर्वथा निवृत्ति हो जाती है, अर्थात् मायामय जगत्से इसका सम्बन्ध सर्वथा छूट जाता है॥ १०॥

सम्बन्ध—*उन परमदेवको जाननेका फल पुनः बताया जाता है—*

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः
क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।
तस्याभिध्यानात् तृतीयं देहभेदे
विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः॥ ११॥

तस्य=उस परमदेवका; **अभिध्यानात्**=निरन्तर ध्यान करनेसे; **देवम्**=उस प्रकाशमय परमात्माको; **ज्ञात्वा**=जान लेनेपर; **सर्वपाशापहानिः**=समस्त बन्धनोंका नाश हो जाता है; (क्योंकि) **क्लेशैः क्षीणैः**=क्लेशोंका नाश हो जानेके कारण; **जन्ममृत्युप्रहाणिः**=जन्म-मृत्युका सर्वथा अभाव हो जाता है; (अतः वह) **देहभेदे**=शरीरका नाश होनेपर; **तृतीयम्**=तीसरे लोक (स्वर्ग) तकके; **विश्वैश्वर्यम् [त्यक्त्वा]**=समस्त ऐश्वर्यका त्याग करके; **केवलः**= सर्वथा विशुद्ध; **आप्तकामः**=पूर्णकाम हो जाता है॥ ११॥

व्याख्या—परमपुरुष परमात्माका निरन्तर ध्यान करते-करते जब साधक उन परमदेवको जान लेता है, तब इसके समस्त बन्धनोंका सदाके लिये सर्वथा नाश हो जाता है; क्योंकि अविद्या, अस्मिता (अहंकार) राग, द्वेष और मरणभय—इन पाँचों क्लेशोंका नाश हो जानेके कारण उसके जन्म-मरणका सदाके लिये अभाव हो जाता है। अतः वह फिर कभी बन्धनमें नहीं पड़ सकता। वह इस शरीरका नाश होनेपर तृतीय लोक अर्थात् स्वर्गके सबसे ऊँचे स्तर—ब्रह्मलोकतकके बड़े-से-बड़े समस्त ऐश्वर्योंका त्याग करके प्रकृतिसे वियुक्त, सर्वथा विशुद्ध कैवल्यपदको प्राप्त हो पूर्णकाम हो जाता है—उसे किसी प्रकारकी कामना नहीं रहती; क्योंकि वह सम्पूर्ण कामनाओंका फल पा लेता है॥ ११॥

सम्बन्ध—*जानने योग्य तत्त्वका पुनः वर्णन किया जाता है—*

एतज् ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं
नातः परं वेदितव्यं हि किंचित्।

****

भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥ १२ ॥

आत्मसंस्थम्=अपने ही भीतर स्थित; **एतत्**=इस ब्रह्मको; **एव**=ही; **नित्यम्**=सर्वदा; **ज्ञेयम्**=जानना चाहिये; **हि**=क्योंकि; **अतः परम्**=इससे बढ़कर; **वेदितव्यम्**=जानने योग्य तत्त्व; **किंचित्**=दूसरा कुछ भी; **न**=नहीं है; **भोक्ता**=भोक्ता (जीवात्मा); **भोग्यम्**=भोग्य (जडवर्ग); **च**=और; **प्रेरितारम्**=उनके प्रेरक परमेश्वर; **मत्वा**=(इन तीनोंको) जानकर; (मनुष्य) **सर्वम्**=सब कुछ (जान लेता है); **एतत्**=(इस प्रकार) यह; **त्रिविधम्**=तीन भेदोंमें; **प्रोक्तम्**=बताया हुआ ही; **ब्रह्म**=ब्रह्म है ॥ १२ ॥

व्याख्या—ये परमदेव परब्रह्म पुरुषोत्तम अपने ही भीतर—हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं। इनको जाननेके लिये कहीं बाहर जानेकी आवश्यकता नहीं है। इन्हींको सदा जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये; क्योंकि इनसे बढ़कर जानने योग्य दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। इन एकको जाननेसे ही सबका ज्ञान हो जाता है, ये ही सबके कारण और परमाधार हैं। मनुष्य भोक्ता (जीवात्मा), भोग्य (जडवर्ग) और इन दोनोंके प्रेरक ईश्वरको जानकर सब कुछ जान लेता है। फिर कुछ भी जानना शेष नहीं रहता। जिनके ये तीन भेद बताये गये हैं, वे ही समग्र ब्रह्म हैं अर्थात् जड प्रकृति, चेतन आत्मा और उन दोनोंके आधार तथा नियामक परमात्मा—ये तीनों ब्रह्मके ही रूप हैं ॥ १२ ॥

सम्बन्ध—*उक्त ज्ञेयतत्त्वको जाननेका उपाय बताया जाता है—*

वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्ति-
र्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः ।
स भूय एवेन्धनयोनिगृह्य-
स्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे ॥ १३ ॥

यथा=जिस प्रकार; **योनिगतस्य**=योनि अर्थात् आश्रयभूत काष्ठमें स्थित; **वह्नेः**=अग्निका; **मूर्तिः**=रूप; **न दृश्यते**=नहीं दीखता; **च**=और; **लिङ्गनाशः**=उसके चिह्नका (सत्ताका) नाश; **एव**=भी; **न**=नहीं होता; (क्योंकि) **सः**=वह;

भूयः **एव**=चेष्टा करनेपर फिर भी अवश्य; **इन्धनयोनिगृह्यः**=ईंधनरूप अपनी योनिमें ग्रहण किया जा सकता है; **वा**=उसी प्रकार; **तत् उभयम्**=वे दोनों (जीवात्मा और परमात्मा); **देहे**=शरीरमें; **वै**=ही; **प्रणवेन**=ॐकारके द्वारा (साधन करनेपर); **[गृह्यते]**=ग्रहण किये जा सकते हैं॥ १३ ॥

व्याख्या—जिस प्रकार अपनी योनि अर्थात् प्रकट होनेके स्थानविशेष काष्ठ आदिमें स्थित अग्निका रूप दिखलायी नहीं देता। परंतु इस कारण यह नहीं समझा जाता कि अग्नि नहीं है—उसका होना अवश्य माना जाता है; क्योंकि उसकी सत्ता मानकर अरणियोंका मन्थन करनेपर ईंधनरूप अपने स्थानमेंसे वह फिर भी ग्रहण किया जा सकता है। उसी प्रकार उपर्युक्त जीवात्मा और परमात्मा हृदयरूप अपने स्थानमें छिपे रहकर प्रत्यक्ष नहीं होते, परंतु ॐके जपद्वारा साधन करनेपर इस शरीरमें ही इनका साक्षात्कार किया जा सकता है—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है॥ १३ ॥

सम्बन्ध—*ॐकारके द्वारा साधक किस प्रकार उन परमात्माका साक्षात् करे, इस जिज्ञासापर कहा जाता है—*

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्॥ १४ ॥

स्वदेहम्=अपने शरीरको; **अरणिम्**=नीचेकी अरणि; **च**=और; **प्रणवम्**=प्रणवको; **उत्तरारणिम्**=ऊपरकी अरणि; **कृत्वा**=बनाकर; **ध्याननिर्मथनाभ्यासात्**=ध्यानके द्वारा निरन्तर मन्थन करते रहनेसे; (साधक) **निगूढवत्**=छिपी हुई अग्निकी भाँति; (हृदयमें स्थित) **देवम्**=परमदेव परमेश्वरको; **पश्येत्**=देखे॥ १४ ॥

व्याख्या—अग्निको प्रकट करनेके लिये जैसे दो अरणियोंका मन्थन किया जाता है, उसी प्रकार अपने शरीरमें परम पुरुष परमात्माको प्राप्त करनेके लिये शरीरको तो नीचेकी अरणि बनाना चाहिये और ॐकारको ऊपरकी अरणि। अर्थात् शरीरको नीचेकी अरणिकी भाँति समभावसे निश्चल स्थित करके ऊपरकी अरणिकी भाँति ॐकारका वाणीद्वारा जप और मनसे उसके

अर्थस्वरूप परमात्माका निरन्तर चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार इस ध्यानरूप मन्थनके अभ्याससे साधकको काष्ठमें छिपी हुई अग्निकी भाँति अपने हृदयमें छिपे हुए परमदेव परमेश्वरको देख लेना—प्रत्यक्ष कर लेना चाहिये ॥ १४ ॥

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पि-
राप: स्रोत:स्वरणीषु चाग्नि:।
एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ
सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥ १५ ॥

तिलेषु=तिलोंमें; **तैलम्**=तेल; **दधनि**=दहीमें; **सर्पि:**=घी; **स्रोत:सु**=स्रोतोंमें; **आप:**=जल; **च**=और; **अरणीषु**=अरणियोंमें; **अग्नि:**=अग्नि; **इव**=जिस प्रकार छिपे रहते हैं; **एवम्**=उसी प्रकार; **असौ**=वह; **आत्मा**=परमात्मा; **आत्मनि**=अपने हृदयमें छिपा हुआ है; **य:**=जो कोई साधक; **एनम्**=इसको; **सत्येन**=सत्यके द्वारा; (और) **तपसा**=संयमरूप तपसे; **अनुपश्यति**=देखता रहता है—चिन्तन करता रहता है; **[तेन]**= उसके द्वारा; **गृह्यते**=वह ग्रहण किया जाता है ॥ १५ ॥

व्याख्या—जिस प्रकार तिलोंमें तेल, दहीमें घी, ऊपरसे सूखी हुई नदीके भीतरी स्रोतोंमें जल तथा अरणियोंमें अग्नि छिपी रहती है, उसी प्रकार परमात्मा हमारे हृदयरूप गुफामें छिपे हैं। जिस प्रकार अपने-अपने स्थानमें छिपे हुए तेल आदि उनके लिये बताये हुए उपायोंसे उपलब्ध किये जा सकते हैं, उसी प्रकार जो कोई साधक विषयोंसे विरक्त होकर सदाचार, सत्यभाषण तथा संयमरूप तपस्याके द्वारा साधन करता हुआ पूर्वोक्त प्रकारसे उनका निरन्तर ध्यान करता रहता है, उनके द्वारा वे परब्रह्म परमात्मा भी प्राप्त किये जा सकते हैं ॥ १५ ॥

सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम्।
आत्मविद्यातपोमूलं तद् ब्रह्मोपनिषत् परम्॥
तद् ब्रह्मोपनिषत् परम् ॥ १६ ॥

क्षीरे=दूधमें; **अर्पितम्**=स्थित; **सर्पि: इव**=घीकी भाँति; **सर्वव्यापिनम्**=

सर्वत्र परिपूर्ण; **आत्मविद्यातपोमूलम्**=आत्मविद्या तथा तपसे प्राप्त होनेवाले; **आत्मानम्**=परमात्माको (वह पूर्वोक्त साधक जान लेता है); **तत्**=वह; **उपनिषत्**=उपनिषदोंमें बताया हुआ; **परम्**=परमतत्त्व; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **तत्**=वह; **उपनिषत्**=उपनिषदोंमें बताया हुआ; **परम्**=परमतत्त्व; **ब्रह्म**= ब्रह्म है ॥ १६ ॥

व्याख्या—आत्मविद्या और तप जिनकी प्राप्तिके मूलभूत साधन हैं तथा जो दूधमें स्थित घीकी भाँति सर्वत्र परिपूर्ण हैं, उन सर्वान्तर्यामी परमात्माको वह पूर्वोक्त साधक जान लेता है। वे ही उपनिषदोंमें वर्णित परम तत्त्व ब्रह्म हैं। वे ही उपनिषदोंमें वर्णित परम तत्त्व ब्रह्म हैं। अन्तिम वाक्यकी पुनरावृत्ति अध्यायकी समाप्ति सूचित करनेके लिये है ॥ १६ ॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥



द्वितीय अध्याय

सम्बन्ध—*पहले अध्यायमें परमदेव परमात्माके साक्षात्कारका प्रधान उपाय ध्यानको बताया गया। उस ध्यानकी प्रक्रिया बतानेके लिये दूसरा अध्याय आरम्भ किया जाता है। इसमें पहले ध्यानकी सिद्धिके लिये पाँच मन्त्रोंमें परमेश्वरसे प्रार्थना करनेका प्रकार बताया जाता है—*

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत ॥ १ ॥*

सविता=सबको उत्पन्न करनेवाला परमात्मा; **प्रथमम्**=पहले; **मनः**=हमारे मन; (और) **धियः**=बुद्धियोंको; **तत्त्वाय**=तत्त्वकी प्राप्तिके लिये; **युञ्जानः**=अपने स्वरूपमें लगाते हुए; **अग्नेः**=अग्नि (आदि इन्द्रियाभिमानी देवताओं) की; **ज्योतिः**=ज्योति (प्रकाशन-सामर्थ्य) को; **निचाय्य**=अवलोकन करके; **पृथिव्याः**=पार्थिव पदार्थोंसे; **अधि**=ऊपर उठाकर; **आभरत**=हमारी इन्द्रियोंमें स्थापित करे ॥ १ ॥

व्याख्या—सबको उत्पन्न करनेवाले परमात्मा पहले हमारे मन और

---

* यजुर्वेद अध्याय ११ मन्त्र १ इसी प्रकार है।

बुद्धिकी वृत्तियोंको तत्त्वकी प्राप्तिके लिये अपने दिव्य स्वरूपमें लगायें और अग्नि आदि इन्द्रियाभिमानी देवताओंकी जो विषयोंको प्रकाशित करनेकी सामर्थ्य है, उसे दृष्टिमें रखते हुए बाह्य विषयोंसे लौटाकर हमारी इन्द्रियोंमें स्थिरतापूर्वक स्थापित कर दें, जिससे हमारी इन्द्रियोंका प्रकाश बाहर न जाकर बुद्धि और मनकी स्थिरतामें सहायक हो ॥ १ ॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । सुवर्गेयाय शक्त्या ॥ २ ॥*

वयम्=हमलोग; **सवितुः**=सबको उत्पन्न करनेवाले; **देवस्य**=परमदेव परमेश्वरकी; **सवे**=आराधनारूप यज्ञमें; **युक्तेन मनसा**=लगे हुए मनके द्वारा; **सुवर्गेयाय**=स्वर्गीय सुख (भगवत्-प्राप्ति-जनित आनन्द)की प्राप्तिके लिये; **शक्त्या**=पूरी शक्तिसे; **[प्रयतामहे]**=प्रयत्न करें ॥ २ ॥

व्याख्या—हमलोग सबको उत्पन्न करनेवाले; परमदेव परमेश्वरकी आराधनारूप यज्ञमें लगे हुए मनके द्वारा परमानन्दप्राप्तिके लिये पूर्णशक्तिसे प्रयत्न करें। अर्थात् हमारा मन निरन्तर भगवान्‌की आराधनामें लगा रहे और हम भगवत्-प्राप्ति-जनित परमानन्दकी अनुभूतिके लिये पूर्ण शक्तिसे प्रयत्नशील रहें ॥ २ ॥

युक्त्वाय मनसा देवान् सुवर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥ †

सविता=सबको उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर; **सुवः**=स्वर्गादि लोकोंमें; (और) **दिवम्**=आकाशमें; **यतः**=गमन करनेवाले; (तथा) **बृहत्**=बड़ा भारी; **ज्योतिः**=प्रकाश; **करिष्यतः**=फैलानेवाले; **तान्**=उन; (मन और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता) **देवान्**=देवताओंको; **मनसा**=हमारे मन; (और) **धिया**=बुद्धिसे; **युक्त्वाय**=संयुक्त करके; (प्रकाश दान करनेके लिये) **प्रसुवाति**=प्रेरणा करता है अर्थात् करे ॥ ३ ॥

व्याख्या—वे सबको उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर मन और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंको, जो स्वर्ग आदि लोकोंमें और आकाशमें विचरनेवाले

---

* † ये दोनों मन्त्र यजुर्वेद अध्याय ११ के २ और ३ हैं।

तथा बड़ा भारी प्रकाश फैलानेवाले हैं, हमारे मन और बुद्धिसे संयुक्त करके हमें प्रकाश प्रदान करनेके लिये प्रेरणा करें; ताकि हम उन परमेश्वरका साक्षात् करनेके लिये ध्यान करनेमें समर्थ हों। हमारे मन, बुद्धि और इन्द्रियोंमें प्रकाश फैला रहे। निद्रा, आलस्य और अकर्मण्यता आदि दोष हमारे ध्यानमें विघ्न न कर सकें॥ ३॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो
विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक
इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥ ४॥*

(जिसमें) **विप्राः**=ब्राह्मण आदि; **मनः**=मनको; **युञ्जते**=लगाते हैं; **उत**=और; **धियः**=बुद्धिकी वृत्तियोंको भी; **युञ्जते**=लगाते हैं; (जिसने समस्त) **होत्राः वि दधे**=अग्निहोत्र आदि शुभकर्मोंका विधान किया है; (तथा जो) **वयुनावित्**=समस्त जगत्के विचारोंको जाननेवाला; (और) **एकः**=एक है; (उस) **बृहतः**=सबसे महान्; **विप्रस्य**=सर्वत्र व्यापक; **विपश्चितः**=सर्वज्ञ; (एवं) **सवितुः**=सबके उत्पादक; **देवस्य**=परमदेव परमेश्वरकी; **इत्**=निश्चय ही; (हमें) **मही**=महती; **परिष्टुतिः**=स्तुति (करनी चाहिये)॥ ४॥

व्याख्या—जिन परब्रह्म परमात्मामें श्रेष्ठ बुद्धिवाले ब्राह्मणादि अधिकारी मनुष्य अपने मनको लगाते हैं तथा अपनी सब प्रकारकी बुद्धि-वृत्तियोंको भी नियुक्त करते हैं, जिन्होंने अग्निहोत्र आदि समस्त शुभ कर्मोंका विधान किया है, जो समस्त जगत्के विचारोंको जाननेवाले और एक—अद्वितीय हैं, उन सबसे महान्, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सबके उत्पादक परमदेव परमेश्वरकी अवश्य ही हमें भूरि-भूरि स्तुति करनी चाहिये॥ ४॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभि-
र्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः।

---

* यह यजुर्वेद अध्याय ११का चौथा और अध्याय ५का १४वाँ मन्त्र है तथा ऋग्वेद (५।८१।१)में भी है।

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥*

(हे मन और बुद्धि ! मैं) **वाम्**=तुम दोनोंके (स्वामी); **पूर्व्यम्**=सबके आदि; **ब्रह्म**=पूर्णब्रह्म परमात्मासे; **नमोभिः**=बार-बार नमस्कारके द्वारा; **युजे**=संयुक्त होता हूँ; **श्लोकः**=मेरा वह स्तुति-पाठ; **सुरेः**=श्रेष्ठ विद्वान्‌की; **पथ्या इव**=कीर्तिकी भाँति; **व्येतु (वि+एतु)**=सर्वत्र फैल जाय; (जिससे) **अमृतस्य**=अविनाशी परमात्माके; **विश्वे**=समस्त; **पुत्राः**=पुत्र; **ये**=जो; **दिव्यानि**=दिव्य; **धामानि**=लोकोंमें; **आतस्थुः**=निवास करते हैं; **शृण्वन्तु**=सुनें ॥ ५ ॥

व्याख्या—हे मन और बुद्धि ! मैं तुम दोनोंके स्वामी और समस्त जगत्‌के आदिकारण परब्रह्म परमात्माको बार-बार नमस्कार करके विनयपूर्वक उनकी शरणमें जाकर उनमें संलग्न होता हूँ। मेरे द्वारा जो उन परमेश्वरकी महिमाका वर्णन किया गया है, वह विद्वान् पुरुषकी कीर्तिके समान समस्त जगत्‌में व्याप्त हो जाय। उसे अविनाशी परमात्माके वे सभी पुत्र, जो दिव्य लोकोंमें निवास करते हैं, भलीभाँति सुनें ॥ ५ ॥

सम्बन्ध—*ध्यानके लिये परमात्मासे स्तुति करनेका प्रकार बतलानेके अनन्तर अब छठे मन्त्रमें उस ध्यानकी स्थितिका वर्णन करके सातवेंमें मनुष्यको उस ध्यानमें लग जानेके लिये आदेश दिया जाता है—*

अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राधिरुध्यते ।
सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र संजायते मनः ॥ ६ ॥

यत्र=जिस स्थितिमें; **अग्निः**=परमात्मारूप अग्निको; (प्राप्त करनेके उद्देश्यसे) **अभिमथ्यते**=(ॐकारके जप और ध्यानद्वारा) मन्थन किया जाता है; **यत्र**=जहाँ; **वायुः अधिरुध्यते**=प्राणवायुका भलीभाँति विधिपूर्वक निरोध किया जाता है; (तथा) **यत्र**=जहाँ; **सोमः**=आनन्दरूप सोमरस; **अतिरिच्यते**=अधिकतासे प्रकट होता है; **तत्र**=वहाँ (उस स्थितिमें); **मनः**=मन; **संजायते**=

---

* यह मन्त्र यजुर्वेद अध्याय ११का पाँचवाँ है और ऋग्वेद (१० । १३ । १)में भी है।

सर्वथा विशुद्ध हो जाता है ॥ ६ ॥

व्याख्या—जिस स्थितिमें अग्नि प्रकट करनेके लिये अरणियोंद्वारा मन्थन करनेकी भाँति अग्निस्थानीय परमात्माको प्राप्त करनेके लिये पहले अध्याय (१३,१४ मन्त्र) में कहे हुए प्रकारसे शरीरको नीचेकी अरणि और ॐकारको ऊपरकी अरणि बनाकर उसका जप और उसके अर्थरूप परमात्माका निरन्तर चिन्तनरूप मन्थन किया जाता है, जहाँ प्राणवायुका विधिपूर्वक भलीभाँति निरोध किया जाता है, जहाँ आनन्दरूप सोमरस अधिकतासे प्रकट होता है, उस ध्यानावस्थामें मनुष्यका मन सर्वथा विशुद्ध हो जाता है ॥ ६ ॥

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम् ।
तत्र योनिं कृणवसे न हि ते पूर्वमक्षिपत् ॥ ७ ॥

सवित्रा=सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाले परमात्माके द्वारा; **प्रसवेन**=प्राप्त हुई प्रेरणासे; **पूर्व्यम्**=सबके आदिकारण; **ब्रह्म जुषेत**=उस परब्रह्म परमेश्वरकी ही सेवा (आराधना) करनी चाहिये; (तू) **तत्र**=उस परमात्मामें ही; **योनिम्**=आश्रय; **कृणवसे**=प्राप्त कर; **हि**=क्योंकि; (यों करनेसे) **ते**=तेरे; **पूर्वम्**=पूर्वसंचित कर्म; **न अक्षिपत्**=विघ्नकारक नहीं होंगे ॥ ७ ॥

व्याख्या—हे साधक ! सम्पूर्ण जगत्के उत्पादक सर्वान्तर्यामी परमेश्वरकी प्रेरणासे अर्थात् ऊपर बताये हुए प्रकारसे परमात्माकी स्तुति करके उनसे अनुमति प्राप्त कर तुम्हें उन सबके आदि परब्रह्म परमात्माकी ही सेवा (समाराधना) करनी चाहिये, उन परमेश्वरमें ही आश्रय प्राप्त करना चाहिये—उन्हींकी शरण ग्रहण करके उन्हींमें अपने-आपको विलीन कर देना चाहिये । यों करनेसे तुम्हारे पहले किये हुए समस्त संचित कर्म विघ्नकारक नहीं होंगे—बन्धनरूप नहीं होंगे ॥ ७ ॥

सम्बन्ध—*ध्यानयोगका साधन करनेवालेको किस प्रकार बैठकर कैसे ध्यान करना चाहिये, इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं
हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य ।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्
स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥ ८ ॥

विद्वान्=बुद्धिमान् मनुष्य (को चाहिये कि); **त्रिरुन्नतम्**=सिर, गला और छाती—ये तीनों अङ्ग ऊँचे उठाये हुए; **शरीरम्**=शरीरको; **समम्**=सीधा; (और) **स्थाप्य**=स्थिर करके; (तथा) **इन्द्रियाणि**=समस्त इन्द्रियोंको; **मनसा**=मनके द्वारा; **हृदि**=हृदयमें; **संनिवेश्य**=निरुद्ध करके; **ब्रह्मोडुपेन**=ॐकाररूप नौकाद्वारा; **सर्वाणि**=सम्पूर्ण; **भयावहानि**=भयंकर; **स्रोतांसि**=स्रोतों (प्रवाहों) को; **प्रतरेत**=पार कर जाय ॥ ८ ॥

व्याख्या—जो ध्यानयोगका साधन करे, उस बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि सिर, गले और छातीको ऊँचा उठाये रखे, इधर-उधर न झुकने दे तथा शरीरको सीधा और स्थिर रखे; क्योंकि शरीरको सीधा और स्थिर रखे बिना तथा सिर, गला और वक्षःस्थल ऊँचा किये बिना आलस्य, निद्रा और विक्षेपरूप विघ्न आ जाते हैं। अतः इन विघ्नोंसे बचनेके लिये उपर्युक्त प्रकारसे ही बैठना चाहिये। इसके बाद समस्त इन्द्रियोंको बाह्य विषयोंसे हटाकर उनका मनके द्वारा हृदयमें निरोध कर लेना चाहिये। फिर ॐकाररूप नौकाका आश्रय लेकर अर्थात् ॐकारका जप और उसके वाच्य परब्रह्म परमात्माका ध्यान करके समस्त भयानक प्रवाहोंको पार कर लेना चाहिये (गीता ६। १२, १३, १४)। भाव यह है कि नाना योनियोंमें ले जानेवाली जितनी वासनाएँ हैं, वे सब जन्म-मृत्युरूप भय देनेवाले स्रोत (प्रवाह) हैं। इन सबका त्याग करके सदाके लिये अमरपदको प्राप्त कर लेना चाहिये ॥ ८ ॥

प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं
विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः ॥ ९ ॥

विद्वान्=बुद्धिमान् साधक (को चाहिये कि); **इह**=उपर्युक्त योगसाधनामें; **संयुक्तचेष्टः**=आहार-विहार आदि समस्त चेष्टाओंको यथायोग्य करते हुए; **प्राणान् प्रपीड्य**=विधिवत् प्राणायाम करके; **प्राणे क्षीणे**=प्राणके सूक्ष्म हो जानेपर; **नासिकया**=नासिकाद्वारा; **उच्छ्वसीत**=उनको बाहर निकाल दे;

****

दुष्टाश्वयुक्तम्=(इसके बाद) दुष्ट घोड़ोंसे युक्त; **वाहम् इव**=रथको जिस प्रकार सारथि सावधानतापूर्वक गन्तव्य मार्गमें ले जाता है, उसी प्रकार; **एनम्**=इस; **मनः**=मनको; **अप्रमत्तः**=सावधान होकर; **धारयेत**=वशमें किये रहे ॥ ९ ॥

व्याख्या—बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि वह इस योग-साधनाके लिये आहार-विहार आदि समस्त चेष्टाओंको यथायोग्य करता रहे, उन्हें ध्यानयोगके लिये उपयोगी बना ले (गीता ६ । १७) । योगशास्त्रकी विधिके अनुसार प्राणायाम करते-करते जब प्राण अत्यन्त सूक्ष्म हो जाय, तब नासिकाद्वारा उसे बाहर निकाल दे* । इसके बाद जैसे दुष्ट घोड़ोंसे जुते हुए रथको अच्छा सारथि बड़ी सावधानीसे चलाकर अपने गन्तव्य स्थानपर ले जाता है, उसी प्रकार साधकको चाहिये कि बड़ी सावधानीके साथ अपने मनको वशमें रखे, जिससे योगसाधनमें किसी प्रकारका विघ्न न आये और वह परमात्माकी प्राप्तिरूप लक्ष्यपर पहुँच जाय† ॥ ९ ॥

सम्बन्ध—*परब्रह्म परमात्मामें मन लगानेके लिये कैसे स्थानमें कैसी भूमिपर बैठकर साधन करना चाहिये, इस जिज्ञासापर कहा जाता है—*

समे शुचौ शर्करावह्निवालुका-
विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः ।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने
गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

समे=समतल; **शुचौ**=सब प्रकारसे शुद्ध; **शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते**=कंकड़, अग्नि और बालूसे रहित; (तथा) **शब्दजलाश्रयादिभिः**=शब्द, जल और आश्रय आदिकी दृष्टिसे; **अनुकूले**=सर्वथा अनुकूल; **तु**=और; **न चक्षुपीडने**=नेत्रोंको पीड़ा न देनेवाले; **गुहानिवाताश्रयणे**=गुहा आदि वायुशून्य

---

* आठवें और नवें मन्त्रोंमें जो ध्यानके लिये बैठनेकी और साधन करनेकी विधि बतायी गयी है, उसका बड़े सुन्दर ढंगसे सुस्पष्ट वर्णन भगवान्ने गीता अध्याय ६ श्लोक ११से १७ तक किया है।

† कठोपनिषद्में (१ । ३ । २ से ८ तक) रथके रूपकका विस्तृत वर्णन है।

स्थानमें; **मनः**=मनको; **प्रयोजयेत्**=ध्यानमें लगानेका अभ्यास करना चाहिये ॥ १० ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें ध्यानयोगके उपयुक्त स्थानका वर्णन है। भाव यह है कि ध्यानयोगका साधन करनेवाले साधकको ऐसे स्थानमें अपना आसन लगाना चाहिये, जहाँकी भूमि समतल हो—ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी न हो, जो सब प्रकारसे शुद्ध हो—जहाँपर कूड़ा-करकट, मैला आदि न हो, झाड़-बुहारकर साफ किया हुआ हो और स्वभावसे भी पवित्र हो—जैसे कोई देवालय, तीर्थस्थान आदि; जहाँ कंकड़, बालू न हो और अग्नि या धूपकी गर्मी भी न हो; जहाँ कोई मनमें विक्षेप करनेवाला शब्द न होता हो—कोलाहलका सर्वथा अभाव हो; यथावश्यक जल प्राप्त हो सके; किंतु ऐसा जलाशय न हो, जहाँ बहुत लोग आते-जाते हों एवं जहाँ शरीर-रक्षाके लिये उपयुक्त आश्रय हो, परंतु ऐसा न हो, जहाँ धर्मशाला आदिकी भाँति बहुत लोग ठहरते हों; तात्पर्य यह कि इन सब विचारोंके अनुसार जो सर्वथा अनुकूल हो और जहाँका दृश्य नेत्रोंको पीड़ा पहुँचानेवाला—भयानक न हो, ऐसे गुफा आदि वायुशून्य एकान्त स्थानमें पहले बताये हुए प्रकारसे आसन लगाकर अपने मनको परमात्मामें लगानेका अभ्यास करना चाहिये (गीता ६। ११) ॥ १० ॥

सम्बन्ध—*योगाभ्यास करनेवाले साधकका साधन ठीक हो रहा है या नहीं, इसकी पहचान बतायी जाती है—*

नीहारधूमार्कानिलानलानां
खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि
ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥ ११ ॥

ब्रह्मणि योगे=परमात्माकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले योगमें; (पहले) **नीहारधूमार्कानिलानलानाम्**=कुहरा, धूआँ, सूर्य, वायु और अग्निके सदृश; (तथा) **खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम्**=जुगनू, बिजली, स्फटिक-मणि और चन्द्रमाके सदृश; **रूपाणि**=बहुत-से दृश्य; **पुरःसराणि [भवन्ति]**=योगीके सामने प्रकट होते हैं; **एतानि**=ये सब; **अभिव्यक्तिकराणि**=योगकी

सफलताको स्पष्टरूपसे सूचित करनेवाले हैं॥ ११॥

व्याख्या—जब साधक परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिके लिये ध्यानयोगका साधन आरम्भ करता है, तब उसको अपने सामने कभी कुहरेके सदृश रूप दीखता है, कभी धूआँ-सा दिखायी देता है, कभी सूर्यके समान प्रकाश सर्वत्र परिपूर्ण दीखता है, कभी निश्चल वायुकी भाँति निराकार रूप अनुभवमें आता है, कभी अग्निके सदृश तेज दीख पड़ता है, कभी जुगनूके सदृश टिमटिमाहट-सी प्रतीत होती है, कभी बिजलीकी-सी चकाचौंध पैदा करनेवाली दीप्ति दृष्टिगोचर होती है, कभी स्फटिक-मणिके सदृश उज्ज्वल रूप देखनेमें आता है और कभी चन्द्रमाकी भाँति शीतल प्रकाश सर्वत्र फैला हुआ दिखायी देता है। ये सब तथा और भी अनेक दृश्य योग-साधनकी उन्नतिके द्योतक हैं। इनसे यह बात समझमें आती है कि साधकका ध्यान ठीक हो रहा है॥ ११॥

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते
पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥ १२॥

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते=पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँचों महाभूतोंका सम्यक् प्रकारसे उत्थान होनेपर; (तथा) **पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते**=इनसे सम्बन्ध रखनेवाले पाँच प्रकारके योगसम्बन्धी गुणोंकी सिद्धि हो जानेपर; **योगाग्निमयम्**=योगाग्निमय; **शरीरम्**=शरीरको; **प्राप्तस्य**=प्राप्त कर लेनेवाले; **तस्य**=उस साधकको; **न**=न तो; **रोगः**=रोग होता है; **न**=न; **जरा**=बुढ़ापा आता है; **न**=और न; **मृत्युः**=उसकी मृत्यु ही होती है॥ १२॥

व्याख्या—ध्यानयोगका साधन करते-करते जब पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच महाभूतोंका उत्थान हो जाता है, अर्थात् जब साधकका इन पाँचों महाभूतोंपर अधिकार हो जाता है और इन पाँचों महाभूतोंसे सम्बन्ध रखनेवाली योगविषयक पाँचों सिद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं, उस समय योगाग्निमय शरीरको प्राप्त कर लेनेवाले उस योगीके शरीरमें न तो रोग होता है, न बुढ़ापा आता है और न

उसकी मृत्यु ही होती है। अभिप्राय यह कि उसकी इच्छाके बिना उसका शरीर नष्ट नहीं हो सकता (योगद० ३। ४६,४७) ॥ १२ ॥

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं
वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं
योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥ १३ ॥

लघुत्वम्=शरीरका हल्कापन; **आरोग्यम्**=किसी प्रकारके रोगका न होना; **अलोलुपत्वम्**=विषयासक्तिकी निवृत्ति; **वर्णप्रसादम्**=शारीरिक वर्णकी उज्ज्वलता; **स्वरसौष्ठवम्**=स्वरकी मधुरता; **शुभः गन्धः**=(शरीरमें) अच्छी गन्ध; **च**=और; **मूत्रपुरीषम्**=मल-मूत्र; **अल्पम्**=कम हो जाना; (इन सबको) **प्रथमाम् योगप्रवृत्तिम्**=योगकी पहली सिद्धि; **वदन्ति**=कहते हैं ॥ १३ ॥

व्याख्या—भूतोंपर विजय प्राप्त कर लेनेवाले ध्यानयोगीमें पूर्वोक्त शक्तियोंके सिवा और भी शक्तियाँ आ जाती हैं। उदाहरणतः उसका शरीर हल्का हो जाता है, शरीरमें भारीपन या आलस्यका भाव नहीं रहता। वह सदा ही नीरोग रहता है, उसे कभी कोई रोग नहीं होता। भौतिक पदार्थोंमें उसकी आसक्ति नष्ट हो जाती है। कोई भी भौतिक पदार्थ सामने आनेपर उसके मन और इन्द्रियोंका उसकी ओर आकर्षण नहीं होता। उसके शरीरका वर्ण उज्ज्वल हो जाता है। स्वर अत्यन्त मधुर और स्पष्ट हो जाता है। शरीरमेंसे बहुत अच्छी गन्ध निकलकर सब ओर फैल जाती है। मल और मूत्र बहुत ही स्वल्प मात्रामें होने लगते हैं। ये सब योगमार्गकी प्रारम्भिक सिद्धियाँ हैं—ऐसा योगीलोग कहते हैं ॥ १३ ॥

यथैव विम्बं मृदयोपलिप्तं
तेजोमयं भ्राजते तत् सुधान्तम्।
तद्वाऽऽत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही
एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥ १४ ॥

यथा=जिस प्रकार; **मृदया**=मिट्टीसे; **उपलिप्तम्**=लिप्त होकर मलिन हुआ; **[यत्]**=जो; **तेजोमयम्**=प्रकाशयुक्त; **विम्बम्**=रत्न है; **तत् एव**=वही;

सुधान्तम्=भलीभाँति धुल जानेपर; **भ्राजते**=चमकने लगता है; **तत् वा**=उसी प्रकार; **देही**=शरीरधारी (जीवात्मा); **आत्मतत्त्वम्**=(मल आदिसे रहित) आत्मतत्त्वको; **प्रसमीक्ष्य**=(योगके द्वारा) भलीभाँति प्रत्यक्ष करके; **एकः**=अकेला कैवल्य अवस्थाको प्राप्त; **वीतशोकः**=सब प्रकारके दुःखोंसे रहित; (तथा) **कृतार्थः**=कृतकृत्य; **भवते**=हो जाता है ॥ १४ ॥

व्याख्या—जिस प्रकार कोई तेजोमय रत्न मिट्टीसे लिप्त रहनेके कारण छिपा रहता है, अपने असली रूपमें प्रकट नहीं होता, परंतु वही जब मिट्टी आदिको हटाकर धो-पोंछकर साफ कर लिया जाता है, तब अपने असली रूपमें चमकने लगता है, उसी प्रकार इस जीवात्माका वास्तविक स्वरूप अत्यन्त स्वच्छ होनेपर भी अनन्त जन्मोंमें किये हुए कर्मोंके संस्कारोंसे मलिन हो जानेके कारण प्रत्यक्ष प्रकट नहीं होता; परंतु जब मनुष्य ध्यानयोगके साधनद्वारा समस्त मलोंको धोकर आत्माके यथार्थ स्वरूपको भलीभाँति प्रत्यक्ष कर लेता है, तब वह असङ्ग हो जाता है। अर्थात् उसका जो जड पदार्थोंके साथ संयोग हो रहा था, उसका नाश होकर वह कैवल्य अवस्थाको प्राप्त हो जाता है तथा उसके सब प्रकारके दुःखोंका अन्त होकर वह सर्वथा कृतकृत्य हो जाता है। उसका मनुष्य-जन्म सार्थक हो जाता है (योग० ४ । ३४) ॥ १४ ॥

यदाऽऽत्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं
दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १५ ॥

तु=उसके बाद; **यदा**=जब; **युक्तः**=वह योगी; **इह**=यहाँ; **दीपोपमेन**=दीपकके सदृश (प्रकाशमय); **आत्मतत्त्वेन**=आत्मतत्त्वके द्वारा; **ब्रह्मतत्त्वम्**=ब्रह्मतत्त्वको; **प्रपश्येत्**=भलीभाँति प्रत्यक्ष देख लेता है; **[तदा सः]**=उस समय वह; **अजम्**=(उस) अजन्मा; **ध्रुवम्**=निश्चल; **सर्वतत्त्वैः**=समस्त तत्त्वोंसे; **विशुद्धम्**=विशुद्ध; **देवम्**=परमदेव परमात्माको; **ज्ञात्वा**=जानकर; **सर्वपाशैः**=सब बन्धनोंसे; **मुच्यते**=सदाके लिये छूट जाता है ॥ १५ ॥

व्याख्या—फिर जब वह योगी इसी स्थितिमें दीपकके सदृश निर्मल प्रकाशमय पूर्वोक्त आत्मतत्त्वके द्वारा ब्रह्मतत्त्वको भलीभाँति देख लेता है—अर्थात् उन परब्रह्म परमात्माको प्रत्यक्ष कर लेता है, तब उन जन्मादि समस्त विकारोंसे रहित, अचल और निश्चित तथा समस्त तत्त्वोंसे असङ्ग—सर्वथा विशुद्ध परमदेव परमात्माको तत्त्वसे जानकर सब प्रकारके बन्धनोंसे सदाके लिये छूट जाता है।

इस मन्त्रमें आत्मतत्त्वसे ब्रह्मतत्त्वको जाननेकी बात कहकर यह भाव दिखाया गया है कि परमात्माका साक्षात्कार मन, बुद्धि और इन्द्रियोंद्वारा नहीं हो सकता। इन सबकी वहाँ पहुँच नहीं है, वे एकमात्र आत्मतत्त्वके द्वारा ही प्रत्यक्ष होते हैं॥ १५॥

एष ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥ १६॥*

ह=निश्चय ही; **एषः**=यह (ऊपर बताया हुआ); **देवः**=परमदेव परमात्मा; **सर्वाः**=समस्त; **प्रदिशः अनु**=दिशाओं और अवान्तर दिशाओंमें अनुगत (व्याप्त) है; **[सः] ह**=वही प्रसिद्ध परमात्मा; **पूर्वः**=सबसे पहले; **जातः**=हिरण्यगर्भरूपमें प्रकट हुआ था; (और) **सः उ**=वही; **गर्भे**=समस्त ब्रह्माण्डरूप गर्भमें; **अन्तः**=अन्तर्यामीरूपसे स्थित है; **सः एव**=वही; **जातः**=इस समय जगत्के रूपमें प्रकट है; **सः**=और वही; **जनिष्यमाणः**=भविष्यमें भी प्रकट होनेवाला है; **[सः]**=वह; **जनान् प्रत्यङ्**=सब जीवोंके भीतर; (अन्तर्यामी-रूपसे) **तिष्ठति**=स्थित है; (और) **सर्वतोमुखः**=सब ओर मुखवाला है॥ १६॥

व्याख्या—निश्चय ही ये ऊपर बताये हुए परमदेव ब्रह्म समस्त दिशा और अवान्तर दिशाओंमें व्याप्त हैं अर्थात् सर्वत्र परिपूर्ण हैं। जगत्में कोई भी

---

* यह मन्त्र यजुर्वेद अध्याय ३२ का चौथा है।

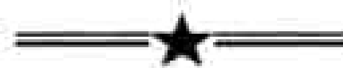
ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ वे न हों। वे ही प्रसिद्ध परब्रह्म परमात्मा सबसे पहले हिरण्यगर्भरूपमें प्रकट हुए थे। वे ही इस ब्रह्माण्डरूप गर्भमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं। वे ही इस समय जगत्‌के रूपमें प्रकट हैं और भविष्यमें अर्थात् प्रलयके बाद सृष्टिकालमें पुनः प्रकट होनेवाले हैं। ये समस्त जीवोंके भीतर अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं तथा सब ओर मुखवाले अर्थात् सबको सब ओरसे देखनेवाले हैं॥ १६॥

यो देवो अग्नौ यो अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः॥ १७॥

यः=जो; **देवः**=परमदेव परमात्मा; **अग्नौ**=अग्निमें है; **यः**=जो; **अप्सु**=जलमें है; **यः**=जो; **विश्वम् भुवनम् आविवेश**=समस्त लोकोंमें प्रविष्ट हो रहा है; **यः**=जो; **ओषधीषु**=ओषधियोंमें है; (तथा) **यः**=जो; **वनस्पतिषु**=वनस्पतियोंमें है; **तस्मै देवाय**=उन परमदेव परमात्माके लिये; **नमः**=नमस्कार है; **नमः**=नमस्कार है॥ १७॥

व्याख्या—जो सर्वशक्तिमान् पूर्णब्रह्म परमदेव अग्निमें हैं, जो जलमें हैं, जो समस्त लोकोंमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हो रहे हैं, जो ओषधियोंमें हैं और जो वनस्पतियोंमें हैं—अर्थात् जो सर्वत्र परिपूर्ण हैं जिनका अनेक प्रकारसे पहले वर्णन कर आये हैं, उन परमदेव परमात्माको नमस्कार है। नमस्कार है। '**नमः**' शब्दको दुहरानेका अभिप्राय अध्यायकी समाप्तिको सूचित करना है॥ १७॥

॥ द्वितीय अध्याय समाप्त॥ २॥



तृतीय अध्याय

य एको जालवानीशत ईशनीभिः
सर्वाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
य एवैक उद्भवे सम्भवे च
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ १॥

यः=जो; **एकः**=एक; **जालवान्**=जगत्‌रूप जालका अधिपति; **ईशनीभिः**=

अपनी स्वरूपभूत शासनशक्तियोंद्वारा; **ईशते**=शासन करता है; **ईशनीभिः**=उन विविध शासन-शक्तियोंद्वारा; **सर्वान्**=सम्पूर्ण; **लोकान् ईशते**=लोकोंपर शासन करता है; **यः**=(तथा) जो; **एकः**=अकेला; **एव**=ही; **सम्भवे च उद्भवे**=सृष्टि और उसके विस्तारमें (सर्वथा समर्थ है); **एतत्**=इस ब्रह्मको; **ये**=जो महापुरुष; **विदुः**=जान लेते हैं; **ते**=वे; **अमृताः**=अमर; **भवन्ति**=हो जाते हैं ॥ १ ॥

व्याख्या—जो एक—अद्वितीय परमात्मा जगत्-रूप जालकी रचना करके अपनी स्वरूपभूत शासन-शक्तियोंद्वारा उसपर शासन कर रहे हैं तथा उन विविध शासन-शक्तियोंद्वारा समस्त लोकों और लोकपालोंका यथायोग्य संचालन कर रहे हैं—जिनके शासनमें ये सब अपने-अपने कर्तव्योंका नियमपूर्वक पालन कर रहे हैं तथा जो अकेले ही बिना किसी दूसरेकी सहायता लिये समस्त जगत्की उत्पत्ति और उसका विस्तार करनेमें सर्वथा समर्थ हैं, उन परब्रह्म परमेश्वरको जो महापुरुष तत्त्वसे जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं—जन्म-मृत्युके जालसे सदाके लिये छूट जाते हैं ॥ १ ॥

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ २ ॥

यः=जो; **ईशनीभिः**=अपनी स्वरूपभूत विविध शासन-शक्तियोंद्वारा; **इमान्**=इन सब; **लोकान् ईशते**=लोकोंपर शासन करता है; **[सः] रुद्रः**=वह रुद्र; **एकः हि**=एक ही है; (इसीलिये विद्वान् पुरुषोंने जगत्के कारणका निश्चय करते समय) **द्वितीयाय न तस्थुः**=दूसरेका आश्रय नहीं लिया; **[सः]**=वह परमात्मा; **जनान् प्रत्यङ्**=समस्त जीवोंके भीतर; **तिष्ठति**=स्थित हो रहा है; **विश्वा**=सम्पूर्ण; **भुवनानि संसृज्य**=लोकोंकी रचना करके; **गोपाः**=उनकी रक्षा करनेवाला परमेश्वर; **अन्तकाले**=प्रलयकालमें; **संचुकोच**=इन सबको समेट लेता है ॥ २ ॥

व्याख्या—जो अपनी स्वरूपभूत विविध शासन-शक्तियोंद्वारा इन सब लोकोंपर शासन करते हैं—उनका नियमानुसार संचालन करते हैं, वे रुद्ररूप

परमेश्वर एक ही हैं। अर्थात् इस विश्वका नियमन करनेवाली शक्तियाँ अनेक होनेपर भी वे सब एक ही परमेश्वरकी हैं और उनसे अभिन्न हैं। इसी कारण, ज्ञानीजनोंने जगत्के कारणका निश्चय करते समय किसी भी दूसरे तत्त्वका आश्रय नहीं लिया। सबने एक स्वरसे यही निश्चय किया कि एक परब्रह्म ही इस जगत्के कारण हैं। वे परमात्मा सब जीवोंके भीतर अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं। इन समस्त लोकोंकी रचना करके उनकी रक्षा करनेवाले परमेश्वर प्रलयकालमें स्वयं ही इन सबको समेट लेते हैं, अर्थात् अपनेमें विलीन कर लेते हैं। उस समय इनकी भिन्न-भिन्न रूपोंमें अभिव्यक्ति नहीं रहती ॥ २ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रै-
र्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ ३ ॥*

विश्वतश्चक्षुः=सब जगह आँखवाला; **उत**=तथा; **विश्वतोमुखः**=सब जगह मुखवाला; **विश्वतोबाहुः**=सब जगह हाथवाला; **उत**=और; **विश्वतस्पात्**=सब जगह पैरवाला; **द्यावाभूमी जनयन्**=आकाश और पृथ्वीकी सृष्टि करनेवाला; **[सः]**=वह; **एकः**=एकमात्र; **देवः**=देव (परमात्मा); **बाहुभ्याम्**=मनुष्य आदि जीवोंको दो-दो हाथोंसे; **संधमति**=युक्त करता है (तथा); **पतत्रैः**=(पक्षी-पतंग आदिको) पाँखोंसे; **सं [धमति]**=युक्त करता है ॥ ३ ॥

व्याख्या—वे परमेश्वर एक हैं; फिर भी उनकी सब जगह आँखें हैं, सब जगह मुख हैं, सब जगह हाथ हैं और सब जगह पैर हैं। भाव यह कि वे सम्पूर्ण लोकोंमें स्थित समस्त जीवोंके कर्म और विचारोंको तथा समस्त घटनाओंको अपनी दिव्य शक्तिद्वारा निरन्तर देखते रहते हैं, कोई भी बात उनसे छिपी नहीं रहती। उनका भक्त उनको जहाँ कहीं भोजनके योग्य वस्तु समर्पित

* यजुर्वेद अध्याय १७का उन्नीसवाँ और (अथर्व० १३।२६) मन्त्र इसी प्रकार है तथा ऋ० १०।८१।३ भी इसी प्रकार है।

करता है, उसे वे वहीं भोग लगा सकते हैं। वे सब जगह प्रत्येक वस्तुको एक साथ ग्रहण करनेमें और अपने आश्रित जनोंके संकटका नाश करके उनकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं तथा जहाँ कहीं उनके भक्त उन्हें बुलाना चाहें, वहीं वे एक साथ पहुँच सकते हैं। संसारमें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ उनकी ये शक्तियाँ विद्यमान न हों। आकाशसे लेकर पृथ्वीतक समस्त लोकोंकी रचना करनेवाले एक ही परमदेव परमेश्वर मनुष्य आदि प्राणियोंको दो-दो भुजाओंसे और पक्षियोंको पाँखोंसे युक्त करते हैं। भाव यह कि वे समस्त प्राणियोंको आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न शक्तियों एवं साधनोंसे सम्पन्न करते हैं। यहाँ भुजा और पाँखोंका कथन उपलक्षणमात्र है। इससे यह समझ लेना चाहिये कि समस्त प्राणियोंमें जो कुछ भी शक्ति है, वह सब परमात्माकी ही दी हुई है ॥ ३ ॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ४ ॥

यः=जो; **रुद्रः**=रुद्र; **देवानाम्**=इन्द्रादि देवताओंकी; **प्रभवः**=उत्पत्तिका हेतु; **च**=और; **उद्भवः**=वृद्धिका हेतु है; **च**=तथा; (जो) **विश्वाधिपः**=सबका अधिपति; (और) **महर्षिः**=महान् ज्ञानी (सर्वज्ञ) है; **पूर्वम्**=(जिसने) पहले; **हिरण्यगर्भम्**=हिरण्यगर्भको; **जनयामास**=उत्पन्न किया था; **सः**=वह परमदेव परमेश्वर; **नः**=हमलोगोंको; **शुभया बुद्ध्या**=शुभ बुद्धिसे; **संयुनक्तु**=संयुक्त करें ॥ ४ ॥

व्याख्या—सबको अपने शासनमें रखनेवाले जो रुद्ररूप परमेश्वर इन्द्रादि समस्त देवताओंको उत्पन्न करते और बढ़ाते हैं तथा जो सबके अधिपति और महान् ज्ञानी—सर्वज्ञ हैं, जिन्होंने सृष्टिके आदिमें हिरण्यगर्भको उत्पन्न किया था, वे परमदेव परमात्मा हमलोगोंको शुभ बुद्धिसे संयुक्त करें ॥ ४ ॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी ।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ ५ ॥*

---

* यह यजुर्वेद अध्याय १६का दूसरा मन्त्र है।

रुद्र=हे रुद्रदेव !; **ते**=तेरी; **या**=जो; **अघोरा**=भयानकतासे शून्य (सौम्य); **अपापकाशिनी**=पुण्यसे प्रकाशित होनेवाली; (तथा) **शिवा**=कल्याणमयी; **तनूः**=मूर्ति है; **गिरिशन्त**=हे पर्वतपर रहकर सुखका विस्तार करनेवाले शिव !; **तया**=उस; **शन्तमया तनुवा**=परम शान्त मूर्तिसे; (तू कृपा करके) **नः अभिचाकशीहि**=हमलोगोंको देख ॥ ५ ॥

व्याख्या—हे रुद्रदेव ! आपकी जो भयानकतासे शून्य तथा पुण्यकर्मोंसे प्रकाशित होनेवाली कल्याणमयी सौम्यमूर्ति है—जिसका दर्शन करके मनुष्य परम आनन्दमें मग्न हो जाता है—हे गिरिशन्त ! अर्थात् पर्वतपर निवास करते हुए समस्त लोकोंको सुख पहुँचानेवाले परमेश्वर ! उस परम शान्त मूर्तिसे ही कृपा करके आप हमलोगोंकी ओर देखिये। आपकी कृपादृष्टि पड़ते ही हम सर्वथा पवित्र होकर आपकी प्राप्तिके योग्य बन जायँगे ॥ ५ ॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिँसीः पुरुषं जगत् ॥ ६ ॥*

गिरिशन्त=हे गिरिशन्त !; **याम्**=जिस; **इषुम्**=बाणको; **अस्तवे**=फेंकनेके लिये; (तू) **हस्ते**=हाथमें; **बिभर्षि**=धारण किये हुए है; **गिरित्र**=हे गिरिराज हिमालयकी रक्षा करनेवाले देव !; **ताम्**=उस बाणको; **शिवाम्**=कल्याणमय; **कुरु**=बना ले; **पुरुषम्**=जीवसमुदायरूप; **जगत्**=जगत्को; **मा हिंसीः**=नष्ट न कर (कष्ट न दे) ॥ ६ ॥

व्याख्या—हे गिरिशन्त—हे कैलासवासी सुखदायक परमेश्वर ! जिस बाणको फेंकनेके लिये आपने हाथमें ले रखा है, हे गिरिराज हिमालयकी रक्षा करनेवाले ! आप उस बाणको कल्याणमय बना लें—उसकी क्रूरताको नष्ट करके उसे शान्तिमय बना लें। इस जीवसमुदायरूप जगत्का विनाश न करें—इसको कष्ट न दें ॥ ६ ॥

---

* यह यजुर्वेद अध्याय १६का तीसरा मन्त्र है।

ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तं
यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितार-
मीशं तं ज्ञात्वामृता भवन्ति॥ ७॥

ततः=पूर्वोक्त जीव-समुदायरूप जगत्के; **परम्**=परे; (और) **ब्रह्मपरम्**=हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ; **सर्वभूतेषु**=समस्त प्राणियोंमें; **यथानिकायम्**=उनके शरीरोंके अनुरूप होकर; **गूढम्**=छिपे हुए; (और) **विश्वस्य परिवेष्टितारम्**=सम्पूर्ण विश्वको सब ओरसे घेरे हुए; **तम्**=उस; **बृहन्तम्**=महान्, सर्वत्र व्यापक; **एकम्**=एकमात्र देव; **ईशम्**=परमेश्वरको; **ज्ञात्वा**=जानकर; **अमृताः भवन्ति**=(ज्ञानीजन) अमर हो जाते हैं॥ ७॥

व्याख्या—जो पहले कहे हुए जीव-समुदायरूप जगत्से और हिरण्यगर्भ नामक ब्रह्मासे भी सर्वथा श्रेष्ठ हैं, समस्त प्राणियोंमें उनके शरीरोंके अनुरूप होकर छिपे हुए हैं; समस्त जगत्को सब ओरसे घेरे हुए हैं तथा सर्वत्र व्याप्त और महान् हैं, उन एकमात्र परमेश्वरको जानकर ज्ञानीजन सदाके लिये अमर हो जाते हैं; फिर कभी उनका जन्म-मरण नहीं होता॥ ७॥

सम्बन्ध—*अब इस मन्त्रमें ज्ञानी महापुरुषके अनुभवकी बात कहकर परमात्मज्ञानके फलकी दृढ़ता दिखलाते हैं—*

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ ८॥*

तमसः परस्तात्=अविद्यारूप अन्धकारसे अतीत; (तथा) **आदित्यवर्णम्**=सूर्यकी भाँति स्वयंप्रकाशस्वरूप; **एतम्**=इस; **महान्तम् पुरुषम्**=महान् पुरुष (परमेश्वर) को; **अहम् वेद**=मैं जानता हूँ; **तम्**=उसको; **विदित्वा**=जानकर;

* यह यजुर्वेद अध्याय ३१का अठारहवाँ मन्त्र है।

एव=ही; (मनुष्य) **मृत्युम्**=मृत्युको; **अत्येति (अति+एति)**=उल्लङ्घन कर जाता है; **अयनाय**=(परमपदकी) प्राप्तिके लिये; **अन्यः**=दूसरा; **पन्थाः**=मार्ग; **न**=नहीं; **विद्यते**=है ॥ ८ ॥

व्याख्या—कोई ज्ञानी महापुरुष कहता है—इन महान्‌से भी महान् परम पुरुषोत्तमको मैं जानता हूँ। वे अविद्यारूप अन्धकारसे सर्वथा अतीत हैं तथा सूर्यकी भाँति स्वयंप्रकाशस्वरूप हैं। उनको जानकर ही मनुष्य मृत्युका उल्लङ्घन करनेमें—इस जन्म-मृत्युके बन्धनसे सदाके लिये छुटकारा पानेमें समर्थ होता है। परमपदकी प्राप्तिके लिये इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग अर्थात् उपाय नहीं है ॥ ८ ॥

यस्मात् परं नापरमस्ति किंचिद्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ ९ ॥

यस्मात् परम्=जिससे श्रेष्ठ; **अपरम्**=दूसरा; **किंचित्**=कुछ भी; **न**=नहीं; **अस्ति**=है; **यस्मात्**=जिससे (बढ़कर); **कश्चित्**=कोई भी; **न**=न तो; **अणीयः**=अधिक सूक्ष्म; **न**=और न; **ज्यायः**=महान् ही; **अस्ति**=है; **एकः**=(जो) अकेला ही; **वृक्षः इव**=वृक्षकी भाँति; **स्तब्धः**=निश्चलभावसे; **दिवि**=प्रकाशमय आकाशमें; **तिष्ठति**=स्थित है; **तेन पुरुषेण**=उस परमपुरुष पुरुषोत्तमसे; **इदम्**=यह; **सर्वम्**=सम्पूर्ण जगत्; **पूर्णम्**=परिपूर्ण है ॥ ९ ॥

व्याख्या—उन परमदेव परमेश्वरसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है, वे सर्वश्रेष्ठ हैं। जितने भी सूक्ष्म तत्त्व हैं, उन सबसे अधिक सूक्ष्म वे ही हैं। उनसे अधिक सूक्ष्म कोई भी नहीं है। इसीसे वे छोटे-से-छोटे जीवके शरीरमें प्रविष्ट होकर स्थित हैं। इसी प्रकार जितने भी महान् व्यापक तत्त्व हैं, उन सबसे महान्—अधिक व्यापक वे परब्रह्म हैं; उनसे बड़ा—उनसे अधिक व्यापक कोई भी नहीं है। इसीसे वे प्रलयकालमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको अपने अंदर लीन कर लेते हैं। जो अकेले ही वृक्षकी भाँति निश्चलभावसे परम-धामरूप प्रकाशमय दिव्य

आकाशमें स्थित हैं, उन परब्रह्म परमात्मासे यह समस्त जगत् व्याप्त है—वे परम पुरुष परमेश्वर ही निराकाररूपसे सारे जगत्में परिपूर्ण हैं ॥ ९ ॥

ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम्। य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति ॥ १० ॥

ततः=उस पहले बताये हुए हिरण्यगर्भसे; **यत्**=जो; **उत्तरतरम्**=अत्यन्त उत्कृष्ट है; **तत्**=वह परब्रह्म परमात्मा; **अरूपम्**=आकाररहित; (और) **अनामयम्**=सब प्रकारके दोषोंसे शून्य है; **ये**=जो; **एतत्**=इस परब्रह्म परमात्माको; **विदुः**=जानते हैं; **ते**=वे; **अमृताः**=अमर; **भवन्ति**=हो जाते हैं; **अथ**=परंतु; **इतरे**=इस रहस्यको न जाननेवाले दूसरे लोग; (बार-बार) **दुःखम्**=दुःखको; **एव**=ही; **अपियन्ति**=प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

व्याख्या—उस पहले बताये हुए हिरण्यगर्भसे जो सब प्रकारसे अत्यन्त उत्कृष्ट हैं, वे परब्रह्म परमात्मा आकाररहित और सब प्रकारके विकारोंसे सर्वथा शून्य हैं; जो कोई महापुरुष इन परब्रह्म परमात्माको जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं—सदाके लिये जन्म-मृत्युके दुःखोंसे छूट जाते हैं। परंतु जो इन्हें नहीं जानते, वे सब लोग निश्चयपूर्वक बार-बार दुःखोंको प्राप्त होते हैं। अतः मनुष्यको सदाके लिये दुःखोंसे छूटने और परमानन्दस्वरूप परमात्माको पानेके लिये उन्हें जानना चाहिये ॥ १० ॥

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥ ११ ॥

सः=वह; **भगवान्**=भगवान्; **सर्वाननशिरोग्रीवः**=सब ओर मुख, सिर और ग्रीवावाला है; **सर्वभूतगुहाशयः**=समस्त प्राणियोंके हृदयरूप गुफामें निवास करता है; (और) **सर्वव्यापी**=सर्वव्यापी है; **तस्मात्**=इसलिये; **[सः]**=वह; **शिवः**=कल्याणस्वरूप परमेश्वर; **सर्वगतः**=सब जगह पहुँचा हुआ है ॥ ११ ॥

व्याख्या—उन सर्वेश्वर भगवान्के सभी जगह मुख हैं, सभी जगह सिर और सभी जगह गला हैं। भाव यह कि वे प्रत्येक स्थानपर प्रत्येक अङ्गद्वारा

किया जानेवाला कार्य करनेमें समर्थ हैं। वे समस्त प्राणियोंके हृदयरूप गुफामें निवास करते हैं और सर्वव्यापी हैं, इसलिये वे कल्याणस्वरूप परमेश्वर सभी जगह पहुँचे हुए हैं। अभिप्राय यह कि साधक उनको जिस समय, जहाँ और जिस रूपमें प्रत्यक्ष करना चाहे, उसी समय, उसी जगह और उसी रूपमें वे प्रत्यक्ष हो सकते हैं॥ ११ ॥

महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्तकः।
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः॥ १२ ॥

वै=निश्चय ही; **एषः**=यह; **महान्**=महान्; **प्रभुः**=समर्थ; **ईशानः**=सबपर शासन करनेवाला; **अव्ययः**=अविनाशी; (एवं) **ज्योतिः**=प्रकाशस्वरूप; **पुरुषः**=परमपुरुष पुरुषोत्तम; **इमाम् सुनिर्मलाम् प्राप्तिम् (प्रति)**=अपनी प्राप्तिरूप इस अत्यन्त निर्मल लाभकी ओर; **सत्त्वस्य प्रवर्तकः**=अन्तःकरणको प्रेरित करनेवाला है॥ १२ ॥

व्याख्या—निश्चय ही ये सबपर शासन करनेवाले, महान् प्रभु तथा अविनाशी और प्रकाशस्वरूप परम पुरुष पुरुषोत्तम पहले बताये हुए इस परम निर्मल लाभके प्रति अर्थात् अपने आनन्दमय विशुद्ध स्वरूपकी प्राप्तिकी ओर मनुष्यके अन्तःकरणको प्रेरित करते हैं, हरेक मनुष्यको ये अपनी ओर आकर्षित करते हैं; तथापि यह मूर्ख जीव सब प्रकारका सुयोग पाकर भी उनकी प्रेरणाके अनुसार उनकी प्राप्तिके लिये तत्परतासे चेष्टा नहीं करता, इसी कारण मारा-मारा फिरता है॥ १२ ॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा मन्वीशो मनसाभिक्लृप्तो
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ १३ ॥

अङ्गुष्ठमात्रः=(यह) अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाला; **अन्तरात्मा**=अन्तर्यामी; **पुरुषः**=परम पुरुष (पुरुषोत्तम); **सदा**=सदा ही; **जनानाम्**=मनुष्योंके; **हृदये**=हृदयमें; **संनिविष्टः**=सम्यक् प्रकारसे स्थित है; **मन्वीशः**=मनका स्वामी है; (तथा) **हृदा**=निर्मल हृदय; (और) **मनसा**=विशुद्ध मनसे; **अभिक्लृप्तः**=

ध्यानमें लाया हुआ (प्रत्यक्ष होता है); **ये**=जो; **एतत्**=इस परब्रह्म परमेश्वरको; **विदुः**=जान लेते हैं; **ते**=वे; **अमृताः**=अमर; **भवन्ति**=हो जाते हैं ॥ १३ ॥

व्याख्या—अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाले अन्तर्यामी परमपुरुष परमेश्वर सदा ही मनुष्योंके हृदयमें सम्यक् प्रकारसे स्थित हैं और मनके स्वामी हैं तथा निर्मल हृदय और विशुद्ध मनके द्वारा ध्यानमें लाये जाकर प्रत्यक्ष होते हैं; जो साधक इन परब्रह्म परमेश्वरको जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं, अर्थात् सदाके लिये जन्म-मरणसे छूट जाते हैं—अमृतस्वरूप बन जाते हैं। यहाँ परमात्माको अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाला इसलिये बताया गया है कि मनुष्यका हृदय अँगूठेके नापका होता है और वही परमात्माकी उपलब्धिका स्थान है। ब्रह्मसूत्रमें भी इस विषयपर विचार करके यही निश्चय किया गया है (ब्र० सू० १।३।२४-२५) ॥ १३ ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १४ ॥*

पुरुषः=वह परम पुरुष; **सहस्रशीर्षा**=हजारों सिरवाला; **सहस्राक्षः**=हजारों आँखवाला; **सहस्रपात्**=(और) हजारों पैरवाला; **सः**=वह; **भूमिम्**=समस्त जगत्को; **विश्वतः**=सब ओरसे; **वृत्वा**=घेरकर; **दशाङ्गुलम् अति**=नाभिसे दस अङ्गुल ऊपर (हृदयमें); **अतिष्ठत्**=स्थित है ॥ १४ ॥

व्याख्या—उन परमपुरुष परमेश्वरके हजारों सिर, हजारों आँखें और हजारों पैर हैं अर्थात् सब अवयवोंसे रहित होनेपर भी उनके सिर, आँख और पैर आदि सभी अङ्ग अनन्त और असंख्य हैं। वे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर समस्त जगत्को सब ओरसे घेरकर सर्वत्र व्याप्त हुए ही नाभिसे दस अङ्गुल ऊपर हृदयाकाशमें स्थित हैं। वे सर्वव्यापी और महान् होते हुए ही हृदयरूप एकदेशमें स्थित हैं। भाव यह कि वे अनेक विरुद्ध धर्मोंके आश्रय हैं ॥ १४ ॥

पुरुष एवेदँ सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ १५ ॥ †

---

* -† ये दोनों यजुर्वेदके ३१।१,२, ऋग्वेदके १०।९०।१,२ तथा अथर्ववेदके १९।६।१,४ मन्त्र हैं।

****

यत्=जो; **भूतम्**=अबसे पहले हो चुका है; **यत्**=जो; **भव्यम्**=भविष्यमें होनेवाला है; **च**=और; **यत्**=जो; **अन्नेन**=खाद्य पदार्थोंसे; **अतिरोहति**=इस समय बढ़ रहा है; **इदम्**=यह; **सर्वम्**=समस्त जगत्; **पुरुषः एव**=परम पुरुष परमात्मा ही है; **उत**=और; (वही) **अमृतत्वस्य**=अमृतस्वरूप मोक्षका; **ईशानः**=स्वामी है ॥ १५ ॥

व्याख्या—जो अबसे पहले हो चुका है, जो भविष्यमें होनेवाला है और जो वर्तमान कालमें अन्नके द्वारा अर्थात् खाद्य पदार्थोंके द्वारा बढ़ रहा है, वह समस्त जगत् परम पुरुष परमात्माका ही स्वरूप है। वे स्वयं ही अपनी स्वरूपभूत अचिन्त्यशक्तिसे इस रूपमें प्रकट होते हैं तथा वे ही अमृतस्वरूप मोक्षके स्वामी हैं अर्थात् जीवोंको संसार-बन्धनसे छुड़ाकर अपनी प्राप्ति करा देते हैं। अतएव उनकी प्राप्तिके अभिलाषी साधकोंको उन्हींकी शरणमें जाना चाहिये ॥ १५ ॥

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १६ ॥

तत्=वह परम पुरुष परमात्मा; **सर्वतः पाणिपादम्**=सब जगह हाथ-पैरवाला; **सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्**=सब जगह आँख, सिर और मुखवाला; (तथा) **सर्वतः श्रुतिमत्**=सब जगह कानोंवाला है; (वही) **लोके**=ब्रह्माण्डमें; **सर्वम्**=सबको; **आवृत्य**=सब ओरसे घेरकर; **तिष्ठति**=स्थित है ॥ १६ ॥

व्याख्या—उन परमात्माके हाथ, पैर, आँखें, सिर, मुख और कान सब जगह हैं। वे सब जगह सब शक्तियोंसे सब कार्य करनेमें समर्थ हैं। उन्होंने सभी जगह अपने भक्तोंकी रक्षा करने तथा उन्हें अपनी ओर खींचनेके लिये हाथ बढ़ा रखा है। उनका भक्त उन्हें जहाँ चाहता है, वहीं उन्हें पहुँचा हुआ पाता है। वे सब जगह सब जीवोंद्वारा किये जानेवाले कर्मोंको देख रहे हैं। उनका भक्त जहाँ उन्हें प्रणाम करता है, सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण उनके चरण और सिर आदि अङ्ग वहीं मौजूद रहते हैं। अपने भक्तकी प्रार्थना सुननेके लिये उनके कान सर्वत्र हैं और अपने भक्तद्वारा अर्पण की हुई वस्तुका भोग लगानेके लिये उनका मुख भी सर्वत्र विद्यमान है। वे परमेश्वर इस ब्रह्माण्डमें सबको सब ओरसे घेरकर स्थित हैं—इस बातपर विश्वास करके मनुष्यको उनकी सेवामें लग जाना चाहिये। यह मन्त्र

गीतामें भी इसी रूपमें आया है (१३। १३) ॥ १६ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्॥ १७॥

(जो परम पुरुष परमात्मा) **सर्वेन्द्रियविवर्जितम्**=समस्त इन्द्रियोंसे रहित होनेपर भी; **सर्वेन्द्रियगुणाभासम्**=समस्त इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है; (तथा) **सर्वस्य**=सबका; **प्रभुम्**=स्वामी; **सर्वस्य**=सबका; **ईशानम्**=शासक; (और) **बृहत्**=सबसे बड़ा; **शरणम्**=आश्रय है॥ १७॥

व्याख्या—जो सर्वशक्तिमान् परम पुरुष परमात्मा समस्त इन्द्रियोंसे रहित—देहेन्द्रियादि-भेदसे शून्य होनेपर भी समस्त इन्द्रियोंके विषयोंको जानते हैं तथा सबके स्वामी, परम समर्थ, सबका शासन करनेवाले और जीवके लिये सबसे बड़े आश्रय हैं, मनुष्यको सर्वतोभावसे उन्हींकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। यही मनुष्य-शरीरका अच्छे-से-अच्छा उपयोग है। इस मन्त्रका पूर्वार्द्ध गीतामें ज्यों-का-त्यों आया है (१३। १४)॥ १७॥

नवद्वारे पुरे देही हँ्सो लेलायते बहिः।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च॥ १८॥

सर्वस्य=सम्पूर्ण; **स्थावरस्य**=स्थावर; **च**=और; **चरस्य**=जंगम; **लोकस्य वशी**=जगत्को वशमें रखनेवाला; **हंसः**=वह प्रकाशमय परमेश्वर; **नवद्वारे**=नौ द्वारवाले; **पुरे**=शरीररूपी नगरमें; **देही**=अन्तर्यामीरूपसे हृदयमें स्थित देही है; (तथा वही) **बहिः**=बाह्य जगत्में भी; **लेलायते**=लीला कर रहा है॥ १८॥

व्याख्या—सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम जीवोंके समुदायरूप इस जगत्को अपने वशमें रखनेवाले वे प्रकाशमय परमेश्वर दो आँख, दो कान, दो नासिका, एक मुख, एक गुदा और एक उपस्थ—इस प्रकार नौ दरवाजोंवाले मनुष्य-शरीररूप नगरमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं और वे ही इस बाह्य जगत्में भी लीला कर रहे हैं यों समझकर मन जहाँ सुगमतासे स्थिर हो सके, वहीं उनका ध्यान करना चाहिये॥ १८॥

सम्बन्ध— *पहले जो यह बात कही थी कि वे समस्त इन्द्रियोंसे रहित होकर भी सब*

इन्द्रियोंके विषयोंको जानते हैं, उसीका स्पष्टीकरण किया जाता है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥ १९ ॥

सः=वह परमात्मा; **अपाणिपादः**=हाथ-पैरोंसे रहित होकर भी; **ग्रहीता**=समस्त वस्तुओंको ग्रहण करनेवाला; (तथा) **जवनः**=वेगपूर्वक सर्वत्र गमन करनेवाला है; **अचक्षुः**=आँखोंके बिना ही; **पश्यति**=वह सब कुछ देखता है; (और) **अकर्णः**=कानोंके बिना ही; **शृणोति**=सब कुछ सुनता है; **सः**=वह; **वेद्यम्**=जो कुछ भी जाननेमें आनेवाली वस्तुएँ हैं, उन सबको; **वेत्ति**=जानता है; **च**=परंतु; **तस्य वेत्ता**=उसको जाननेवाला; (कोई) **न अस्ति**=नहीं है; **तम्**=(ज्ञानी पुरुष) उसे; **महान्तम्**=महान्; **अग्र्यम्**=आदि; **पुरुषम्**=पुरुष; **आहुः**=कहते हैं ॥ १९ ॥

व्याख्या—जिनका प्रकरण चल रहा है, वे परब्रह्म परमात्मा हाथोंसे रहित होनेपर भी सब जगह समस्त वस्तुओंको ग्रहण कर लेते हैं तथा पैरोंसे रहित होकर भी बड़े वेगसे इच्छानुसार सर्वत्र गमनागमन करते हैं। आँखोंसे रहित होकर भी सब जगह सब कुछ देखते हैं, कानोंसे रहित होकर भी सब जगह सब कुछ सुनते हैं। वे समस्त जाननेयोग्य और जाननेमें आनेवाले जड-चेतन पदार्थोंको भलीभाँति जानते हैं, परंतु उनको जाननेवाला कोई नहीं है। जो सबको जाननेवाले हैं, उन्हें भला कौन जान सकता है। उनके विषयमें ज्ञानी महापुरुष कहते हैं कि वे सबके आदि, पुरातन, महान् पुरुष हैं ॥ १९ ॥

अणोरणीयान् महतो महीया-
नात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥ २० ॥*

---

* यह मन्त्र कठ उ० १ । २ । २० में भी है।

अणोः अणीयान्=(वह) सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म; (तथा) **महतः महीयान्**=बड़ेसे भी बहुत बड़ा; **आत्मा**=परमात्मा; **अस्य जन्तोः**=इस जीवकी; **गुहायाम्**=हृदयरूप गुफामें; **निहितः**=छिपा हुआ है; **धातुः**=सबकी रचना करनेवाले परमेश्वरकी; **प्रसादात्**=कृपासे; (जो मनुष्य) **तम्**=उस; **अक्रतुम्**=संकल्परहित; **ईशम्**=परमेश्वरको; (और) **महिमानम्**=उसकी महिमाको; **पश्यति**=देख लेता है; (वह) **वीतशोकः**=सब प्रकारके दुःखोंसे रहित (हो जाता है) ॥ २० ॥

व्याख्या—वे सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म और बड़ेसे भी बहुत बड़े परब्रह्म परमात्मा इस जीवकी हृदयरूप गुफामें छिपे हुए हैं। सबकी रचना करनेवाले उन परमेश्वरकी कृपासे ही मनुष्य उन स्वार्थके संकल्पसे सर्वथा रहित अकारण कृपा करनेवाले परम सुहृद् परमेश्वरको और उनकी महिमाको जान सकता है। जब उन परम दयालु परम सुहृद् परमेश्वरका यह साक्षात् कर लेता है, तब सदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंसे रहित होकर उन परम आनन्दस्वरूप परमेश्वरको प्राप्त कर लेता है ॥ २० ॥

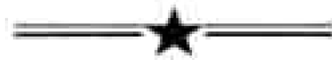
वेदाहमेतमजरं पुराणं
सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य
ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ॥ २१ ॥

ब्रह्मवादिनः=वेदके रहस्यका वर्णन करनेवाले महापुरुष; **यस्य**=जिसके; **जन्मनिरोधम्**=जन्मका अभाव; **प्रवदन्ति**=बतलाते हैं; **[यम्]**=तथा जिसको; **नित्यम्**=नित्य; **प्रवदन्ति**=बतलाते हैं; **एतम्**=इस; **विभुत्वात्**=व्यापक होनेके कारण; **सर्वगतम्**=सर्वत्र विद्यमान; **सर्वात्मानम्**=सबके आत्मा; **अजरम्**=जरा, मृत्यु आदि विकारोंसे रहित; **पुराणम्**=पुराणपुरुष परमेश्वरको; **अहम्**=मैं; **वेद**=जानता हूँ ॥ २१ ॥

व्याख्या—परमात्माको प्राप्त हुए महात्माका कहना है कि 'वेदके रहस्यका वर्णन करनेवाले महापुरुष जिन्हें जन्मरहित तथा नित्य बताते हैं, व्यापक होनेके कारण जो सर्वत्र विद्यमान हैं—जिनसे कोई भी स्थान खाली

नहीं है, जो जरा-मृत्यु आदि समस्त विकारोंसे सर्वथा रहित हैं और सबके आदि—पुराणपुरुष हैं, उन सबके आत्मा—अन्तर्यामी परब्रह्म परमेश्वरको मैं जानता हूँ' ॥ २१ ॥

॥ तृतीय अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥



चतुर्थ अध्याय

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्
वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ १ ॥

यः=जो; **अवर्णः**=रंग, रूप आदिसे रहित होकर भी; **निहितार्थः**=छिपे हुए प्रयोजनवाला होनेके कारण; **बहुधा शक्तियोगात्**=विविध शक्तियोंके सम्बन्धसे; **आदौ**=सृष्टिके आदिमें; **अनेकान्**=अनेक; **वर्णान्**=रूप-रंग; **दधाति**=धारण कर लेता है; **च**=तथा; **अन्ते**=अन्तमें; **विश्वम्**=यह सम्पूर्ण विश्व; (जिसमें) **व्येति (वि+एति) च**=विलीन भी हो जाता है; **सः**=वह; **देवः**=परमदेव (परमात्मा); **एकः**=एक (अद्वितीय) है; **सः**=वह; **नः**=हमलोगोंको; **शुभया बुद्ध्या**=शुभ बुद्धिसे; **संयुनक्तु**=संयुक्त करें ॥ १ ॥

व्याख्या—जो परब्रह्म परमात्मा अपने निराकार स्वरूपमें रूप-रंग आदिसे रहित होकर भी सृष्टिके आदिमें किसी रहस्यपूर्ण प्रयोजनके कारण अपनी स्वरूपभूत नाना प्रकारकी शक्तियोंके सम्बन्धसे अनेक रूप-रंग आदि धारण करते हैं तथा अन्तमें यह सम्पूर्ण जगत् जिनमें विलीन भी हो जाता है—अर्थात् जो बिना किसी अपने प्रयोजनके जीवोंका कल्याण करनेके लिये ही उनके कर्मानुसार इस नाना रंग-रूपवाले जगत्‌की रचना, पालन और संहार करते हैं और समय-समयपर आवश्यकतानुसार अनेक रूपोंमें प्रकट होते हैं, वे परमदेव परमेश्वर वास्तवमें एक—अद्वितीय हैं। उनके अतिरिक्त कुछ नहीं है। वे हमें शुभ बुद्धिसे युक्त करें ॥ १ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार प्रार्थना करनेका प्रकार बताया गया। अब तीन मन्त्रोंद्वारा परमेश्वरका जगत्‌के रूपमें चिन्तन करते हुए उनकी स्तुति करनेका प्रकार बतलाया जाता है—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः॥ २॥*

तत् एव=वही; **अग्निः**=अग्नि है; **तत्**=वह; **आदित्यः**=सूर्य है; **तत्**=वह; **वायुः**=वायु है; **उ**=तथा; **तत्**=वही; **चन्द्रमाः**=चन्द्रमा है; **तत्**=वह; **शुक्रम्**=अन्यान्य प्रकाशयुक्त नक्षत्र आदि है; **तत्**=वह; **आपः**=जल है; **तत्**=वह; **प्रजापतिः**=प्रजापति है; (और) **तत् एव**=वही; **ब्रह्म**=ब्रह्मा है॥ २॥

व्याख्या—वे परब्रह्म ही अग्नि, जल, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, अन्यान्य प्रकाशमय नक्षत्र आदि प्रजापति और ब्रह्मा हैं। ये सब उन एक अद्वितीय परब्रह्म परमेश्वरकी ही विभूतियाँ हैं। इन सबके अन्तर्यामी आत्मा वे ही हैं, अतः ये सब उन्हींके स्वरूप हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत्‌के रूपमें उन परमात्माका चिन्तन करना चाहिये॥ २॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥ ३॥†

त्वम्=तू; **स्त्री**=स्त्री है; **त्वम्**=तू; **पुमान्**=पुरुष है; **त्वम्**=तू ही; **कुमारः**=कुमार; **उत वा**=अथवा; **कुमारी**=कुमारी; **असि**=है; **त्वम्**=तू; **जीर्णः**=बूढ़ा होकर; **दण्डेन**=लाठीके सहारे; **वञ्चसि**=चलता है; [**उ**]=तथा; **त्वम्**=तू ही; **जातः**=विराट्‌रूपमें प्रकट होकर; **विश्वतोमुखः**=सब ओर मुखवाला; **भवसि**=हो जाता है॥ ३॥

व्याख्या—हे सर्वेश्वर! आप स्त्री, पुरुष, कुमार, कुमारी आदि अनेक रूपोंवाले हैं—अर्थात् इन सबके रूपमें आप ही प्रकट हो रहे हैं। आप ही बूढ़े होकर लाठीके सहारे चलते हैं अर्थात् आप ही बुड्ढोंके रूपमें अभिव्यक्त

---

* यह मन्त्र यजुर्वेद ३२। १ में भी आया है।

† यह अथर्ववेद काण्ड १० सूक्त ८ का २७वाँ मन्त्र है।

हैं। हे परमात्मन्! आप ही विराट्रूपमें प्रकट होकर सब ओर मुख किये हुए हैं, अर्थात् सम्पूर्ण जगत् आपका ही स्वरूप है। जगत्में जितने भी मुख दिखायी देते हैं, सब आपके ही हैं॥ ३॥

नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्ष-
स्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः।
अनादिमत्त्वं विभुत्वेन वर्तसे
यतो जातानि भुवनानि विश्वा॥ ४॥

[त्वम् एव]=तू ही; **नीलः**=नीलवर्ण; **पतङ्गः**=पतङ्ग है; **हरितः**=हरे रंगका; (और) **लोहिताक्षः**=लाल आँखोंवाला (पक्षी है एवं); **तडिद्गर्भः**=मेघ; **ऋतवः**=वसन्त आदि ऋतुएँ; (तथा) **समुद्राः**=सप्त समुद्ररूप है; **यतः**=क्योंकि; **[त्वत्तः एव]**=तुझसे ही; **विश्वा**=सम्पूर्ण; **भुवनानि**=लोक; **जातानि**=उत्पन्न हुए हैं; **त्वम्**=तू ही; **अनादिमत्**=अनादि (प्रकृतियों) का स्वामी; (और) **विभुत्वेन**=व्यापकरूपसे; **वर्तसे**=सबमें विद्यमान है॥ ४॥

व्याख्या—हे सर्वान्तर्यामिन्! आप ही नीले रंगके पतङ्ग (भौंरे) तथा हरे रंग और लाल आँखोंवाले पक्षी—तोते हैं; आप ही बिजलीसे युक्त मेघ हैं, वसन्तादि सब ऋतुएँ और सातों समुद्र भी आपके ही रूप हैं। अर्थात् इन नाना प्रकारके रंग-रूपवाले समस्त जड-चेतन पदार्थोंके रूपमें मैं आपको ही देख रहा हूँ; क्योंकि आपसे ही ये समस्त लोक और उनमें निवास करनेवाले सम्पूर्ण जीव-समुदाय प्रकट हुए हैं। व्यापकरूपसे आप ही सबमें विद्यामान हैं तथा अव्यक्त एवं जीवरूप अपनी दो अनादि प्रकृतियोंके (जिन्हें गीतामें अपरा और परा नामोंसे कहा गया है) स्वामी भी आप ही हैं। अतः एकमात्र आपको ही मैं सबके रूपमें देखता हूँ॥ ४॥

सम्बन्ध—*पूर्व मन्त्रमें परब्रह्म परमेश्वरको जिन दो प्रकृतियोंका स्वामी बताया गया है, वे दोनों अनादि प्रकृतियाँ कौन-सी हैं—इसका स्पष्टीकरण किया जाता है—*

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ ५ ॥

सरूपाः=अपने ही सदृश अर्थात् त्रिगुणमय; **बह्वीः**=बहुत-से; **प्रजाः**=भूत-समुदायोंको; **सृजमानाम्**=रचनेवाली; (तथा) **लोहितशुक्लकृष्णाम्**=लाल, सफेद और काले रंगकी अर्थात् त्रिगुणमयी; **एकाम्**=एक; **अजाम्**=अजा (अजन्मा—अनादि प्रकृति)को; **हि**=निश्चय ही; **एकः अजः**=एक अजन्मा (अज्ञानी जीव); **जुषमाणः**=आसक्त हुआ; **अनुशेते**=भोगता है; (और) **अन्यः**=दूसरा; **अजः**=अज (ज्ञानी महापुरुष); **एनाम्**=इस; **भुक्तभोगाम्**=भोगी हुई प्रकृतिको; **जहाति**=त्याग देता है ॥ ५ ॥

व्याख्या—पिछले मन्त्रमें जिनका संकेत किया गया है; उन दो प्रकृतियोंमेंसे एक तो वह है, जिसका गीतामें अपरा नामसे उल्लेख हुआ है तथा जिसके आठ भेद किये गये हैं (गीता ७ । ४) । यह अपने अधिष्ठाता परमदेव परमेश्वरकी अध्यक्षतामें अपने ही सदृश अर्थात् त्रिगुणमय असंख्य जीवदेहोंको उत्पन्न करती है । त्रिगुणमयी अथवा त्रिगुणात्मिका होनेसे इसे तीन रंगवाली कहा गया है । सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण ही इसके तीन रंग हैं । सत्त्वगुण निर्मल एवं प्रकाशक होनेसे उसे श्वेत माना गया है । रजोगुण रागात्मक है, अतएव उसका रंग लाल माना गया है तथा तमोगुण अज्ञानरूप एवं आवरक होनेसे उसे कृष्णवर्ण कहा गया है । इन तीन गुणोंको लेकर ही प्रकृतिको सफेद, लाल एवं काले रंगकी कहा गया । दूसरी जिसका गीतामें जीवरूप परा अथवा चेतन प्रकृतिके नामसे (७ । ५), क्षेत्रज्ञके नामसे (१३ । १) तथा अक्षर-पुरुषके नामसे (१५ । १६) वर्णन किया गया है, उसके दो भेद हैं । एक तो वे जीव, जो उस अपरा प्रकृतिमें आसक्त होकर—उसके साथ एकरूप होकर उसके विचित्र भोगोंको अपने कर्मानुसार भोगते हैं । दूसरा समुदाय उन ज्ञानी महापुरुषोंका है, जिन्होंने इसके भोगोंको भोगकर इसे निःसार और क्षणभङ्गुर समझकर इसका सर्वथा परित्याग कर दिया है । ये दोनों प्रकारके जीव स्वरूपतः अजन्मा तथा अनादि हैं । इसीलिये इन्हें

'अज' कहा गया है ॥ ५ ॥*

सम्बन्ध—*वह परा प्रकृतिरूप जीवसमुदाय, जो इस प्रकृतिके भोगोंको भोगता है, कब और कैसे मुक्त हो सकता है—इस जिज्ञासापर दो मन्त्रोंमें कहते हैं—*

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ ६ ॥†

सयुजा=सदा साथ रहनेवाले; (तथा) **सखाया**=परस्पर सख्यभाव रखनेवाले; **द्वा**=दो; **सुपर्णा**=पक्षी (जीवात्मा एवं परमात्मा); **समानम्**=एक ही; **वृक्षम् परिषस्वजाते**=वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर रहते हैं; **तयोः**=उन दोनोंमेंसे; **अन्यः**=एक (जीवात्मा) तो; **पिप्पलम्**=उस वृक्षके फलों (कर्मफलों) को; **स्वादु**=स्वाद ले-लेकर; **अत्ति**=खाता है; **अन्यः**=(किंतु) दूसरा (ईश्वर); **अनश्नन्**=उनका उपभोग न करता हुआ; **अभिचाकशीति**=केवल देखता रहता है ॥ ६ ॥

व्याख्या—जिस प्रकार गीता आदिमें जगत्का अश्वत्थ-वृक्षके रूपमें वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इस मन्त्रमें शरीरको अश्वत्थ-वृक्षका और

---

* सांख्यमतावलम्बियोंने इस मन्त्रको सांख्यशास्त्रका बीज माना है और इसीके आधारपर उक्त दर्शनको श्रुतिसम्मत सिद्ध किया है। सांख्यकारिकाके प्रसिद्ध टीकाकार तथा अन्य दर्शनोंके व्याख्याता सर्वतन्त्रस्वतन्त्र स्वनामधन्य श्रीवाचस्पति मिश्रने अपनी सांख्य-तत्त्वकौमुदी नामक टीकाके आरम्भमें इसी मन्त्रको कुछ परिवर्तनके साथ मङ्गलाचरणके रूपमें उद्धृत करते हुए इसमें वर्णित प्रकृतिकी वन्दना की है। यहाँ काव्यमयी भाषामें प्रकृतिको एक तिरंगी बकरीके रूपमें चित्रित किया गया है, जो बद्धजीवरूप बकरेके संयोगसे अपनी ही जैसी तिरंगी—त्रिगुणमयी संतान उत्पन्न करती है। संस्कृतमें 'अजा' बकरीको भी कहते हैं। इसी श्लेषका उपयोग करके प्रकृतिका आलङ्कारिक रूपमें वर्णन किया गया है।

† यह मन्त्र अथर्ववेद काण्ड ९ सूक्त १४ का २० वाँ है तथा ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १६४ का २० वाँ है।

जीवात्मा तथा परमात्माको पक्षियोंका रूप देकर वर्णन किया गया है। इसी प्रकार कठोपनिषद्में जीवात्मा और परमात्माको गुहामें प्रविष्ट छाया और धूपके रूपमें बताकर वर्णन किया गया है (कठ० १। ३। १)। दोनों जगहका भाव प्रायः एक ही है। यहाँ मन्त्रका सारांश यह है कि यह मनुष्य-शरीर मानो एक पीपलका वृक्ष है। ईश्वर और जीव—ये दोनों सदा साथ रहनेवाले दो मित्र मानो दो पक्षी हैं। ये दोनों इस शरीररूप वृक्षमें एक साथ एक ही हृदयरूप घोंसलेमें निवास करते हैं। शरीरमें रहते हुए प्रारब्धानुसार जो सुख-दुःखरूप कर्मफल प्राप्त होते हैं, वे ही मानो इस पीपलके फल हैं। इन फलोंको जीवात्मारूप एक पक्षी तो स्वादपूर्वक खाता है। अर्थात् हर्ष-शोकका अनुभव करते हुए कर्मफलको भोगता है। दूसरा ईश्वररूप पक्षी इन फलोंको खाता नहीं, केवल देखता रहता है अर्थात् इस शरीरमें प्राप्त हुए सुख-दुःखोंको वह भोगता नहीं, केवल उनका साक्षी बना रहता है। परमात्माकी भाँति यदि जीवात्मा भी इनका द्रष्टा बन जाय तो फिर उसका इनसे कोई सम्बन्ध न रह जाय। ऐसे ही जीवात्माके सम्बन्धमें पिछले मन्त्रमें यह कहा गया है कि वह प्रकृतिका उपभोग कर चुकनेके बाद उसे निःसार समझकर उसका परित्याग कर देता है, उससे मुँह मोड़ लेता है। उसके लिये फिर प्रकृति अर्थात् जगत्की सत्ता ही नहीं रह जाती। फिर तो वह और उसका मित्र—दो ही रह जाते हैं और परस्पर मित्रताका आनन्द लूटते हैं। यही इस मन्त्रका तात्पर्य मालूम होता है। मुण्डक० ३। १। १ में भी यह मन्त्र इसी रूपमें आया है॥ ६॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो-
ऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश-
मस्य महिमानमिति वीतशोकः॥ ७॥

समाने वृक्षे=पूर्वोक्त शरीररूप एक ही वृक्षपर रहनेवाला; **पुरुषः**=जीवात्मा; **निमग्नः**=गहरी आसक्तिमें डूबा हुआ है; (अतः) **अनीशया**=असमर्थ होनेके कारण (दीनतापूर्वक); **मुह्यमानः**=मोहित हुआ; **शोचति**=शोक करता रहता है; **यदा**=जब (यह भगवान्की अहैतुकी दयासे); **जुष्टम्**=भक्तोंद्वारा नित्य सेवित;

अन्यम्=अपनेसे भिन्न; **ईशम्**=परमेश्वरको; (और) **अस्य**=उसकी; **महिमानम्**=आश्चर्यमयी महिमाको; **पश्यति**=प्रत्यक्ष देख लेता है; **इति**=तब; **वीतशोक**:=सर्वथा शोकरहित; **[भवति]**=हो जाता है ॥ ७ ॥

व्याख्या—पहले बतलाये हुए इस शरीररूप एक ही वृक्षपर हृदयरूप घोंसलेमें परमात्माके साथ रहनेवाला यह जीवात्मा जबतक अपने साथ रहनेवाले परम सुहृद् परमेश्वरकी ओर नहीं देखता, इस शरीरमें ही आसक्त होकर मोहमें निमग्न रहता है, अर्थात् शरीरमें अत्यन्त ममता करके उसके द्वारा भोगोंका उपभोग करनेमें ही रचा-पचा रहता है, तबतक असमर्थता और दीनतासे मोहित हुआ नाना प्रकारके दुःखोंको भोगता रहता है। जब कभी इसपर भगवान्‌की अहैतुकी दया होती है, तब यह अपनेसे भिन्न, अपने ही साथ रहनेवाले, परम सुहृद्, परम प्रिय भगवान्‌को पहचान पाता है। जो भक्तजनोंद्वारा निरन्तर सेवित हैं, उन परमेश्वरको तथा उनकी आश्चर्यमयी महिमाको, जो जगत्‌में सर्वत्र भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रकट हो रही है, जब यह देख लेता है, उस समय तत्काल ही सर्वथा शोकरहित हो जाता है। मुण्डक० ३।१।२ में भी यह मन्त्र इसी रूपमें आया है ॥ ७ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति
य इत् तद् विदुस्त इमे समासते ॥ ८ ॥*

यस्मिन्=जिसमें; **विश्वे**=समस्त; **देवा**:=देवगण; **अधि**=भलीभाँति; **निषेदु**:=स्थित हैं; **[तस्मिन्]**=उस; **अक्षरे**=अविनाशी; **परमे व्योमन्**=परम व्योम (परम धाम)में; **ऋच**:=सम्पूर्ण वेद स्थित हैं; **य**:=जो मनुष्य; **तम्**=उसको; **न**=नहीं; **वेद**=जानता; **[सः]**=वह; **ऋचा**=वेदोंके द्वारा; **किम्**=क्या;

---

* यह मन्त्र ऋग्वेद मण्डल १ सू० १६४ का उनचालीसवाँ है तथा अथर्ववेद (९।१५।१८) में भी है।

करिष्यति=सिद्ध करेगा; **इत्**=परंतु; **ये**=जो; **तत्**=उसको; **विदुः**=जानते हैं; **ते**=वे तो; **इमे**=ये; **समासते**=सम्यक् प्रकारसे उसीमें स्थित हैं ॥ ८ ॥

व्याख्या—परब्रह्म परमेश्वरके जिस अविनाशी दिव्य चेतन परम आकाशस्वरूप परमधामसे समस्त देवगण अर्थात् उन परमात्माके पार्षदगण उन परमेश्वरकी सेवा करते हुए निवास करते हैं, वहीं समस्त वेद भी पार्षदोंके रूपमें मूर्तिमान् होकर भगवान्‌की सेवा करते हैं। जो मनुष्य उस परमधाममें रहनेवाले परब्रह्म पुरुषोत्तमको नहीं जानता और इस रहस्यको भी नहीं जानता कि समस्त वेद उन परमात्माकी सेवा करनेवाले उन्हींके अङ्गभूत पार्षद हैं, वह वेदोंके द्वारा अपना क्या प्रयोजन सिद्ध करेगा ? अर्थात् कुछ सिद्ध नहीं कर सकेगा। परंतु जो उन परमात्माको तत्त्वसे जान लेते हैं, वे तो उस परमधाममें ही सम्यक् प्रकारसे स्थित रहते हैं, अर्थात् वहाँसे कभी नहीं लौटते ॥ ८ ॥

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि
भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति।
अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्
तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः ॥ ९ ॥

छन्दांसि=छन्द; **यज्ञाः**=यज्ञ; **क्रतवः**=क्रतु (ज्योतिष्टोम आदि विशेष यज्ञ); **व्रतानि**=नाना प्रकारके व्रत; **च**=तथा; **यत्**=और भी जो कुछ; **भूतम्**=भूत; **भव्यम्**=भविष्य एवं वर्तमानरूपसे; **वेदाः**=वेद; **वदन्ति**=वर्णन करते हैं; **एतत् विश्वम्**=इस सम्पूर्ण जगत्‌को; **मायी**=प्रकृतिका अधिपति परमेश्वर; **अस्मात्**=इस (पहले बताये हुए महाभूतादि तत्त्वोंके समुदाय) से; **सृजते**=रचता है; **च**=तथा; **अन्यः**=दूसरा (जीवात्मा); **तस्मिन्**=उस प्रपञ्चमें; **मायया**=मायाके द्वारा; **संनिरुद्धः**=भलीभाँति बँधा हुआ है ॥ ९ ॥

व्याख्या—जो समस्त वेदमन्त्र रूप छन्द, यज्ञ, क्रतु अर्थात् ज्योतिष्टोमादि विशेष यज्ञ, नाना प्रकारके व्रत अर्थात् शुभकर्म, सदाचार और उनके नियम हैं तथा और भी जो कुछ भूत, भविष्य, वर्तमान पदार्थ हैं, जिनका वर्णन वेदोंमें पाया जाता है—इन सबको वे प्रकृतिके अधिष्ठाता परमेश्वर ही

अपने अंशभूत इस पहले बताये हुए पञ्चभूत आदि तत्त्वसमुदायसे रचते हैं; इस प्रकार रचे हुए उस जगत्‌में अन्य अर्थात् पहले बताये हुए ज्ञानी महापुरुषोंसे भिन्न जीवसमुदाय मायाके द्वारा बँधा हुआ है। जबतक वह अपने स्वामी परमदेव परमेश्वरको साक्षात् नहीं कर लेता, तबतक उसका इस प्रकृतिसे छुटकारा नहीं हो सकता; अतः मनुष्यको उन परमात्माको जानने और पानेकी उत्कट अभिलाषा रखनी चाहिये॥ ९॥

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥ १०॥

मायाम्=माया; **तु**=तो; **प्रकृतिम्**=प्रकृतिको; **विद्यात्**=समझना चाहिये; **तु**=और; **मायिनम्**=मायापति; **महेश्वरम्**=महेश्वरको समझना चाहिये; **तस्य तु**=उसीके; **अवयवभूतैः**=अङ्गभूत कारण-कार्य-समुदायसे; **इदम्**=यह; **सर्वम्**=सम्पूर्ण; **जगत्**=जगत्; **व्याप्तम्**=व्याप्त हो रहा है॥ १०॥

व्याख्या—इस प्रकरणमें जिसका मायाके नामसे वर्णन हुआ है, वह तो भगवान्‌की शक्तिरूपा प्रकृति है और उस माया नामसे कही जानेवाली शक्तिरूपा प्रकृतिका अधिपति परब्रह्म परमात्मा महेश्वर है; इस प्रकार इन दोनोंको अलग-अलग समझना चाहिये। उस परमेश्वरकी शक्तिरूपा प्रकृतिके ही अङ्गभूत कारण-कार्य-समुदायसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है॥ १०॥

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको
यस्मिन्निदं स च वि चैति सर्वम्।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति॥ ११॥

यः=जो; **एकः**=अकेला ही; **योनिम् योनिम् अधितिष्ठति**=प्रत्येक योनिका अधिष्ठाता हो रहा है; **यस्मिन्**=जिसमें; **इदम्**=यह; **सर्वम्**=समस्त जगत्; **समेति**=प्रलयकालमें विलीन हो जाता है; **च**=और; **व्येति च**=सृष्टिकालमें विविध रूपोंमें प्रकट भी हो जाता है; **तम्**=उस; **ईशानम्**= सर्वनियन्ता; **वरदम्**=वरदायक; **ईड्यम्**=स्तुति करनेयोग्य; **देवम्**=परमदेव परमेश्वरको; **निचाय्य**=

तत्त्वसे जानकर; (मनुष्य) **अत्यन्तम्**=निरन्तर बनी रहनेवाली; **इमाम्**=इस (मुक्तिरूप); **शान्तिम्**=परम शान्तिको; **एति**=प्राप्त हो जाता है ॥ ११ ॥

व्याख्या—परब्रह्म परमेश्वर प्रत्येक योनिके एकमात्र अध्यक्ष हैं— जगत्‌में जितने प्रकारके कारण माने जाते हैं, उन सबके अधिष्ठाता हैं। उनमें किसी कार्यको उत्पन्न करनेकी शक्ति उन्हीं सर्वकारण परमात्माकी है और उन्हींकी अध्यक्षतामें वे उन-उन कार्योंको उत्पन्न करते हैं। वे परमेश्वर ही उन सबपर शासन करते हैं—उनकी यथायोग्य व्यवस्था करते हैं। यह समस्त जगत् प्रलयके समय उनमें विलीन हो जाता है तथा पुनः सृष्टिकालमें उन्हींसे विविध रूपोंमें उत्पन्न हो जाता है। उन सर्वनियन्ता, वरदायक, एकमात्र स्तुति करनेयोग्य परमदेव, सर्वसुहृद्, सर्वेश्वर परमात्माको जानकर यह जीव निरन्तर बनी रहनेवाली परमनिर्वाणरूप शान्तिको प्राप्त हो जाता है। गीतामें इसका शाश्वती शान्ति (गीता ९। ३१), परा शान्ति (गीता १८। ६२) आदि नामोंसे भी वर्णन आता है ॥ ११ ॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ १२ ॥

यः=जो; **रुद्रः**=रुद्र; **देवानाम्**=इन्द्रादि देवताओंको; **प्रभवः**=उत्पन्न करनेवाला; **च**=और; **उद्भवः**=बढ़ानेवाला है; **च**=तथा; (जो) **विश्वाधिपः**=सबका अधिपति; **महर्षिः**=(और) महान् ज्ञानी (सर्वज्ञ) है; (जिसने सबसे पहले) **जायमानम्**=उत्पन्न हुए; **हिरण्यगर्भम्**=हिरण्यगर्भको; **पश्यत**=देखा था; **सः**=वह परमदेव परमेश्वर; **नः**=हमलोगोंको; **शुभया बुद्ध्या**=शुभ बुद्धिसे; **संयुनक्तु**=संयुक्त करें ॥ १२ ॥

व्याख्या—सबको अपने शासनमें रखनेवाले जो रुद्ररूप परमेश्वर इन्द्रादि समस्त देवताओंको उत्पन्न करते और बढ़ाते हैं तथा जो सबके अधिपति और महान् ज्ञानसम्पन्न (सर्वज्ञ) हैं, जिन्होंने सृष्टिके आदिमें सबसे पहले उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भको देखा था, अर्थात् जो ब्रह्माके भी पूर्ववर्ती हैं, वे परमदेव परमात्मा

हमलोगोंको शुभ बुद्धिसे संयुक्त करें, जिससे हम उनकी ओर बढ़कर उन्हें प्राप्त कर सकें। शुभ बुद्धि वही है, जो जीवको परम कल्याणरूप परमात्माकी ओर लगाये। गायत्री-मन्त्रमें भी इसी बुद्धिके लिये प्रार्थना की गयी है। पहले इसी उपनिषद् (३। ४) में यह मन्त्र आ चुका है॥ १२॥

यो देवानामधिपो यस्मिँल्लोका अधिश्रिताः। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ १३॥

यः=जो; **देवानाम्**=समस्त देवोंका; **अधिपः**=अधिपति है; **यस्मिन्**=जिसमें; **लोकाः**=समस्त लोक; **अधिश्रिताः**=सब प्रकारसे आश्रित हैं; **यः**=जो; **अस्य**=इस; **द्विपदः**=दो पैरवाले; (और) **चतुष्पदः**=चार पैरवाले समस्त जीवसमुदायका; **ईशे**=शासन करता है; (उस) **कस्मै देवाय**=आनन्दस्वरूप परमदेव परमेश्वरकी; (हम) **हविषा**=हविष्य अर्थात् श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भेंट समर्पण करके; **विधेम**=पूजा करें॥ १३॥

व्याख्या—जो सर्वनियन्ता परमेश्वर समस्त देवोंके अधिपति हैं, जिनमें समस्त लोक सब प्रकारसे आश्रित हैं अर्थात् जो स्थूल, सूक्ष्म और अव्यक्त अवस्थाओंमें सदा ही सब प्रकारसे सबके आश्रय हैं, जो दो पैरवाले और चार पैरवाले अर्थात् सम्पूर्ण जीव-समुदायका अपनी अचिन्त्य शक्तियोंके द्वारा शासन करते हैं, उन आनन्दस्वरूप परमदेव सर्वाधार सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी हम श्रद्धा-भक्तिपूर्वक हविःस्वरूप भेंट समर्पण करके पूजा करें। अर्थात् सब कुछ उन्हें समर्पण करके उन्हींके हो जायँ। यही उनकी प्राप्तिका सहज उपाय है॥ १३॥

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्त्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति॥ १४॥*

सूक्ष्मातिसूक्ष्मम्=(जो) सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म; **कलिलस्य मध्ये**=

* यह मन्त्र इसी उपनिषद् (५। १३) में आया है, यहाँ थोड़ा भेद है।

हृदय-गुहारूप गुह्यस्थानके भीतर स्थित; **विश्वस्य**=अखिल विश्वकी; **स्रष्टारम्**=रचना करनेवाला; **अनेकरूपम्**=अनेक रूप धारण करनेवाला; (तथा) **विश्वस्य परिवेष्टितारम्**=समस्त जगत्‌को सब ओरसे घेर रखनेवाला है; (उस) **एकम्**=एक (अद्वितीय); **शिवम्**=कल्याणस्वरूप महेश्वरको; **ज्ञात्वा**=जानकर; (मनुष्य) **अत्यन्तम्**=सदा रहनेवाली; **शान्तिम्**=शान्तिको; **एति**=प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

व्याख्या—जो परब्रह्म परमात्मा सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं—अर्थात् जो बिना उनकी कृपाके जाने नहीं जाते, जो सबकी हृदय-गुहारूप गुह्यस्थानके भीतर स्थित हैं अर्थात् जो हमारे समीप हैं, जो अखिल विश्वकी रचना करते हैं तथा स्वयं विश्वरूप होकर अनेक रूप धारण किये हुए हैं—यही नहीं, जो निराकाररूपसे समस्त जगत्‌को सब ओरसे घेरे रहते हैं, उन सर्वोपरि एक—अद्वितीय कल्याणस्वरूप महेश्वरको जानकर मनुष्य सदा रहनेवाली असीम, अविनाशी और अतिशय शान्तिको प्राप्त कर लेता है, क्योंकि वह महापुरुष इस अशान्त जगत्-प्रपञ्चसे सर्वथा सम्बन्धरहित एवं उपरत हो जाता है ॥ १४ ॥

स एव काले भुवनस्य गोप्ता
विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः ।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च
तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥ १५ ॥

सः एव=वही; **काले**=समयपर; **भुवनस्य गोप्ता**=समस्त ब्रह्माण्डोंकी रक्षा करनेवाला; **विश्वाधिपः**=समस्त जगत्‌का अधिपति; (और) **सर्वभूतेषु**=समस्त प्राणियोंमें; **गूढः**=छिपा हुआ है; **यस्मिन्**=जिसमें; **ब्रह्मर्षयः**=वेदज्ञ महर्षिगण; **च**=और; **देवताः**=देवतालोग भी; **युक्ताः**=ध्यानद्वारा संलग्न हैं; **तम्**=उस (परमदेव परमेश्वर) को; **एवम्**=इस प्रकार; **ज्ञात्वा**=जानकर; (मनुष्य) **मृत्युपाशान्**=मृत्युके बन्धनोंको; **छिनत्ति**=काट डालता है ॥ १५ ॥

व्याख्या—जिनका बार-बार वर्णन किया गया है, वे परमदेव परमेश्वर ही समयपर अर्थात् स्थितिकालमें समस्त ब्रह्माण्डोंकी रक्षा करते हैं तथा वे ही

***

सम्पूर्ण जगत्के अधिपति और समस्त प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे छिपे हुए हैं। उन्हींमें वेदके रहस्यको समझनेवाले महर्षिगण और समस्त देवतालोग भी ध्यानके द्वारा संलग्न रहते हैं। सब उन्हींका स्मरण और चिन्तन करके उन्हींमें जुड़े रहते हैं। इस प्रकार उन परमदेव परमेश्वरको जानकर मनुष्य यमराजके समस्त पाशोंको अर्थात् जन्म-मृत्युके कारणभूत समस्त बन्धनोंको काट डालता है। फिर वह कभी प्रकृतिके बन्धनमें नहीं आता, सदाके लिये सर्वथा मुक्त हो जाता है॥ १५॥

घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं
ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ १६॥

शिवम्=कल्याणस्वरूप; **एकम् देवम्**=एक (अद्वितीय) परमदेवको; **घृतात् परम्**=मक्खनके ऊपर रहनेवाले; **मण्डम् इव**=सारभागकी भाँति; **अतिसूक्ष्मम्**=अत्यन्त सूक्ष्म; (और) **सर्वभूतेषु**=समस्त प्राणियोंमें; **गूढम्**=छिपा हुआ; **ज्ञात्वा**=जानकर; (तथा) **विश्वस्य परिवेष्टितारम्**=समस्त जगत्को सब ओरसे घेरकर स्थित हुआ; **ज्ञात्वा**=जानकर; (मनुष्य) **सर्वपाशैः**=समस्त बन्धनोंसे, **मुच्यते**=छूट जाता है॥ १६॥

व्याख्या—जो मक्खनके ऊपर रहनेवाले सारभागकी भाँति सबके सार एवं अत्यन्त सूक्ष्म हैं, उन कल्याणस्वरूप एकमात्र परमदेव परमेश्वरको समस्त प्राणियोंमें छिपा हुआ तथा समस्त जगत्को सब ओरसे घेरकर उसे व्याप्त करनेवाला जानकर मनुष्य समस्त बन्धनोंसे सदाके लिये सर्वथा छूट जाता है॥ १६॥

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो
य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ १७॥

एषः=यह; **विश्वकर्मा**=जगत्कर्ता; **महात्मा**=महात्मा; **देवः**=परमदेव

परमेश्वर; **सदा**=सर्वदा; **जनानाम्**=सब मनुष्योंके; **हृदये**=हृदयमें; **संनिविष्टः**=सम्यक् प्रकारसे स्थित है; (तथा) **हृदा**=हृदयसे; **मनीषा**=बुद्धिसे; (और) **मनसा**=मनसे; **अभिक्लृप्तः**=ध्यानमें लाया हुआ; **[आविर्भवति=]** प्रत्यक्ष होता है; **ये**=जो साधक; **एतत्**=इस रहस्यको; **विदुः**=जान लेते हैं; **ते**=वे; **अमृताः**=अमृतस्वरूप; **भवन्ति**=हो जाते हैं ॥ १७ ॥

व्याख्या—ये जगत्को उत्पन्न करनेवाले महात्मा अर्थात् सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी परमदेव परमेश्वर सदा ही सभी मनुष्योंके हृदयमें सम्यक् प्रकारसे स्थित हैं। उनके गुण-प्रभावको सुनकर द्रवित और विशुद्ध हुए निर्मल हृदयसे, निश्चययुक्त बुद्धिसे तथा एकाग्र मनके द्वारा निरन्तर ध्यान करनेपर वे परमात्मा प्रत्यक्ष होते हैं। जो साधक इस रहस्यको जान लेते हैं, वे उन्हें प्राप्त करके अमृतस्वरूप हो जाते हैं, सदाके लिये जन्म-मरणसे छूट जाते हैं ॥ १७ ॥

यदातमस्तन्न दिवा न रात्रि-
र्न सन्न चासञ्छिव एव केवलः ।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं
प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ॥ १८ ॥

यदा=जब; **अतमः [स्यात्]**=अज्ञानमय अन्धकारका सर्वथा अभाव हो जाता है; **तत्***=उस समय (अनुभवमें आनेवाला तत्त्व); **न**=न; **दिवा**=दिन है; **न**=न; **रात्रिः**=रात है; **न**=न; **सन्**=सत् है; **च**=और; **न**=न; **असन्**=असत् है; **केवलः**=एकमात्र, विशुद्ध; **शिवः एव**=कल्याणमय शिव ही है; **तत्**=वह; **अक्षरम्**=सर्वथा अविनाशी है; **तत्**=वह; **सवितुः**=सूर्याभिमानी देवताका भी; **वरेण्यम्**=उपास्य है; **च**=तथा; **तस्मात्**=उसीसे; **पुराणी**=(यह) पुराना; **प्रज्ञा**=ज्ञान; **प्रसृता**=फैला है ॥ १८ ॥

व्याख्या—जिस समय अज्ञानरूप अन्धकारका सर्वथा अभाव हो जाता है, उस समय प्रत्यक्ष होनेवाला तत्त्व न दिन है, न रात है। अर्थात् उसे न तो

* 'तत्' अव्यय पद है, यहाँ 'तदा'के अर्थमें इसका प्रयोग हुआ है।

दिनकी भाँति प्रकाशमय कहा जा सकता है और न रातकी भाँति अन्धकारमय ही; क्योंकि वह इन दोनोंसे सर्वथा विलक्षण है, वहाँ ज्ञान-अज्ञानके भेदकी कल्पनाके लिये स्थान नहीं है। वह न सत् है और न असत् है—उसे न तो 'सत्' कहना बनता है न 'असत्' ही; क्योंकि वह 'सत्' और 'असत्' नामसे समझे जानेवाले पदार्थोंसे सर्वथा विलक्षण है। एकमात्र कल्याणस्वरूप शिव ही वह तत्त्व हैं। वे सर्वथा अविनाशी हैं। सूर्य आदि समस्त देवताओंके उपास्यदेव हैं। उन्हींसे यह सदासे चला आता हुआ अनादि ज्ञान विस्तारित हुआ है अर्थात् परमात्माको जानने और पानेका साधन अधिकारियोंको परम्परासे प्राप्त होता चला आ रहा है॥ १८॥

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः॥ १९॥

एनम्=इस परमात्माको; (कोई भी) **न**=न तो; **ऊर्ध्वम्**=ऊपरसे; **न**=न; **तिर्यञ्चम्**=इधर-उधरसे; (और) **न**=न; **मध्ये**=बीचमेंसे ही; **परिजग्रभत्**=भलीभाँति पकड़ सकता है; **यस्य**=जिसका; **महद्यशः**=महान् यश; **नाम**=नाम है; **तस्य**=उसकी; **प्रतिमा**=कोई उपमा; **न**=नहीं; **अस्ति**=है॥ १९॥

व्याख्या—जिसका पहले कई मन्त्रोंमें वर्णन किया गया है, उन परम प्राप्य परब्रह्मको कोई भी मनुष्य न तो ऊपरसे पकड़ सकता है, न नीचेसे पकड़ सकता है और न बीचमें इधर-उधरसे ही पकड़ सकता है; क्योंकि ये सर्वथा अग्राह्य हैं—ग्रहण करनेमें नहीं आते। इन्हें जानने और ग्रहण करनेकी बात जो शास्त्रोंमें पायी जाती है, उसका रहस्य वही समझ सकता है, जो उन्हें पा लेता है। वह भी वाणीद्वारा व्यक्त नहीं कर सकता; क्योंकि मन और वाणीकी वहाँ पहुँच नहीं है। वे समझने और समझानेमें आनेवाले समस्त पदार्थोंसे सर्वथा विलक्षण हैं। जिनका नाम 'महान् यश' है, जिनका महान् यश सर्वत्र प्रसिद्ध है, उन परात्पर ब्रह्मकी कोई भी उपमा नहीं है, जिसके द्वारा उनको समझा अथवा समझाया जा सके। उनके अतिरिक्त कोई दूसरा उनके समान हो तो उसकी उपमा दी जाय। अतः मनुष्यको उस परम प्राप्य तत्त्वको जानने

और पानेका अभिलाषी बनना चाहिये; क्योंकि जब वह मनुष्यको प्राप्त होता है, तब हमें क्यों नहीं होगा॥ १९॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एन-
मेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ २०॥

अस्य=इस परब्रह्म परमात्माका; **रूपम्**=स्वरूप; **संदृशे**=दृष्टिके सामने; **न**=नहीं; **तिष्ठति**=ठहरता; **एनम्**=इस परमात्माको; **कश्चन**=कोई भी; **चक्षुषा**=आँखोंसे; **न**=नहीं; **पश्यति**=देख सकता; **ये**=जो साधकजन; **एनम्**=इस; **हृदिस्थम्**=हृदयमें स्थित अन्तर्यामी परमेश्वरको; **हृदा**=भक्तियुक्त हृदयसे; (तथा) **मनसा**=निर्मल मनके द्वारा; **एवम्**=इस प्रकार; **विदुः**=जान लेते हैं; **ते**=वे; **अमृताः**=अमृतस्वरूप (अमर); **भवन्ति**=हो जाते हैं॥ २०॥

व्याख्या—जिनका प्रकरण चल रहा है, उन परम प्राप्य परमात्माका स्वरूप दृष्टिके सामने नहीं ठहरता। जब साधक मनके द्वारा उनका चिन्तन करता है, तब विशुद्ध अन्तःकरणमें किसी-किसी समय उन आनन्दमय परमेश्वरके स्वरूपकी झलक-सी आती है; परंतु वह निश्चल नहीं होती। इन परब्रह्म परमात्माको कोई भी प्राकृत नेत्रोंद्वारा नहीं देख सकता। जिसको वे परमात्मा स्वयं कृपा करके दिव्यदृष्टि प्रदान करते हैं, वही उन्हें दिव्य नेत्रोंसे देख सकता है। जो साधक इस प्रकार इस रहस्यको समझकर अपने हृदयमें स्थित इन अन्तर्यामी परमात्माको उनके गुण, प्रभावका श्रवण करके भक्तिभावसे द्रवित हृदयके द्वारा तथा निर्मल मनके द्वारा निरन्तर उनका चिन्तन करके उन्हें जान लेते हैं, वे अमृत हो जाते हैं—सदाके लिये जन्म-मरणसे छूट जाते हैं॥ २०॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार परमेश्वरके स्वरूपका और उनकी प्राप्तिके फलका वर्णन करके अब दो मन्त्रोंमें पहले मुक्तिके लिये और पीछे सांसारिक भयसे रक्षाके लिये उन परमात्मासे प्रार्थना करनेका प्रकार बताया जाता है—*

अजात इत्येवं कश्चिद् भीरुः प्रपद्यते।
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्॥ २१॥

रुद्र=हे रुद्र (संहार करनेवाले देव)!; **अजातः**=तू अजन्मा है; **इति एवम्**=यों समझकर; **कश्चित्**=कोई; **भीरुः**=जन्म-मरणके भयसे डरा हुआ मनुष्य; **प्रपद्यते**=तेरी शरण लेता है; (मैं भी वैसा ही हूँ, अतः) **ते**=तेरा; **यत्**=जो; **दक्षिणम्**=दाहिना (कल्याणमय); **मुखम्**=मुख है; **तेन**=उसके द्वारा; **(तू) नित्यम्**=सर्वदा; **माम् पाहि**=मेरी जन्म-मृत्युरूप भयसे रक्षा कर॥ २१॥

व्याख्या—हे रुद्र! अर्थात् सबका संहार करनेवाले परमेश्वर! आप स्वयं अजन्मा हैं, अतः दूसरोंको भी जन्म-मृत्युसे मुक्त कर देना आपका स्वभाव है। यह समझकर कोई जन्म-मरणके भयसे डरा हुआ साधक इस संसारचक्रसे छुटकारा पानेके लिये आपकी शरण लेता है। मैं भी इस संसारचक्रसे छुटकारा पानेके लिये ही आपकी शरणमें आया हूँ; अतः जो आपका दाहिना मुख है, अर्थात् जो आपका परम शान्त कल्याणमय स्वरूप है, उसके द्वारा आप मेरा इस जन्म-मरणरूप महान् भयसे सदाके लिये रक्षा करें। मुझे सदाके लिये इस भयसे मुक्त कर दें॥ २१॥

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे॥ २२॥*

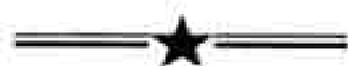
रुद्र=हे सबका संहार करनेवाले रुद्रदेव!; **[वयम्]**=हमलोग; **हविष्मन्तः**=नाना प्रकारकी भेंट लेकर; **सदम्**=सदा; **इत्**=ही; **त्वा**=तुझे; (रक्षाके लिये) **हवामहे**=बुलाते रहते हैं; (अतः तू) **भामितः**=कुपित होकर; **मा**=न तो; **नः**=हमारे; **तोके**=पुत्रोंमें; (और) **तनये**=पौत्रोंमें; **मा**=न; **नः**= हमारी; **आयुषि**=आयुमें; **मा**=न; **नः**=हमारी; **गोषु**=गौओंमें; (और) **मा**=न;

* यह यजुर्वेद अध्याय १६ का सोलहवाँ मन्त्र है। ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ११४ का आठवाँ मन्त्र है।

नः=हमारे; **अश्वेषु**=घोड़ोंमें ही; **रीरिषः**=किसी प्रकारकी कमी कर; (तथा) **नः**=हमारे; **वीरान् मा वधीः**=वीर पुरुषोंका भी नाश न करें॥ २२ ॥

व्याख्या—हे सबका संहार करनेवाले रुद्रदेव ! हमलोग नाना प्रकारकी भेंट समर्पण करते हुए सदा ही आपको बुलाते रहते हैं। आप ही हमारी रक्षा करनेमें सर्वथा समर्थ हैं; अतः हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप हमपर कभी कुपित न हों तथा कुपित होकर हमारे पुत्र और पौत्रोंको, हमारी आयुको—जीवनको तथा हमारे गौ, घोड़े आदि पशुओंको कभी किसी प्रकारकी क्षति न पहुँचायें। हमारे जो वीर—साहसी पुरुष हैं, उनका भी नाश न करें; अर्थात् सब प्रकारसे हमारी और हमारे धन-जनकी रक्षा करें॥ २२ ॥

॥ चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥



पञ्चम अध्याय

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते
विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या
विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः॥ १ ॥

यत्र=जिस, **ब्रह्मपरे**=ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ; **गूढे**=छिपे हुए; **अनन्ते**=असीम; **तु**=और; **अक्षरे**=परम अक्षर परमात्मामें; **विद्याविद्ये**=विद्या और अविद्या; **द्वे**=दोनों; **निहिते**=स्थित हैं (वही ब्रह्म है); **क्षरम्**=(यहाँ) विनाशशील जडवर्ग; **तु**=तो; **अविद्या**=अविद्या नामसे कहा गया है; **तु**=और; **अमृतम्**=अविनाशी वर्ग (जीवसमुदाय); **हि**=ही; **विद्या**=विद्या नामसे कहा गया है; **तु**=तथा; **यः**=जो; **विद्याविद्ये ईशते**=उपर्युक्त विद्या और अविद्यापर शासन करता है; **सः**=वह; **अन्यः**=इन दोनोंसे भिन्न—सर्वथा विलक्षण है॥ १ ॥

व्याख्या—जो परमेश्वर ब्रह्मासे भी अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, अपनी मायाके पर्देमें छिपे हुए हैं, सीमारहित और अविनाशी हैं अर्थात् जो देश-कालसे सर्वथा अतीत हैं तथा जिनका कभी किसी प्रकारसे भी विनाश नहीं हो सकता तथा जिन

परमात्मामें अविद्या और विद्या—दोनों विद्यमान हैं, अर्थात् दोनों ही जिनके आधारपर टिकी हुई हैं, वे पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम हैं। इस मन्त्रमें परिवर्तनशील, घटने-बढ़नेवाले और उत्पत्ति-विनाशशील क्षरतत्त्वको तो अविद्या नामसे कहा गया है; क्योंकि वह जड है, उनमें विद्याका—ज्ञानका सर्वथा अभाव है। उससे भिन्न जो जन्म-मृत्युसे रहित है, जो घटता-बढ़ता नहीं, वह अविनाशी कूटस्थ तत्त्व (जीव-समुदाय) विद्याके नामसे कहा गया है; क्योंकि वह चेतन है, विज्ञानमय है। उपनिषदोंमें जगह-जगह उसका विज्ञानात्माके नामसे वर्णन आया है। यहाँ श्रुतिने स्वयं ही विद्या और अविद्याकी परिभाषा कर दी है, अतः अर्थान्तरकी कल्पना अनावश्यक है। जो इन विद्या और अविद्या नामसे कहे जानेवाले क्षर और अक्षर दोनोंपर शासन करते हैं, दोनोंके स्वामी हैं, दोनों जिनकी शक्तियाँ अथवा प्रकृतियाँ हैं, वे परमेश्वर इन दोनोंसे अन्य—सर्वथा विलक्षण हैं। श्रीगीताजीमें भी कहा है—'**उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः**' इत्यादि (१५। १७) ॥ १ ॥

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको
विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः।
ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे
ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत् ॥ २ ॥

यः=जो; **एकः**=अकेला ही; **योनिम् योनिम्**=प्रत्येक योनिपर; **विश्वानि रूपाणि**=समस्त रूपोंपर; **च**=और; **सर्वाः योनीः**=समस्त कारणोंपर; **अधितिष्ठति**=आधिपत्य रखता है; **यः**=जो; **अग्रे**=पहले; **प्रसूतम्**=उत्पन्न हुए; **कपिलम् ऋषिम्**=कपिल ऋषि (हिरण्यगर्भ) को; **ज्ञानैः**=सब प्रकारके ज्ञानोंसे; **बिभर्ति**=पुष्ट करता है; **च**=तथा; (जिसने) **तम्**=उस कपिल (ब्रह्मा) को; **जायमानम्**=(सबसे पहले) उत्पन्न होते; **पश्येत्**=देखा था (वे ही परमात्मा हैं) ॥ २ ॥

व्याख्या—इस जगत्में देव, पितर, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि जितनी भी योनियाँ हैं तथा प्रत्येक योनिमें जो भिन्न-भिन्न रूप—आकृतियाँ हैं, उन सबके और उनके कारणरूप पञ्च सूक्ष्म महाभूत आदि

समस्त तत्त्वोंके जो एकमात्र अधिपति हैं, अर्थात् वे सब-के-सब जिनके अधीन हैं, जो सबसे पहले उत्पन्न हुए कपिल ऋषिको* अर्थात् हिरण्यगर्भ ब्रह्माको प्रत्येक सर्गके आदिमें सब प्रकारके ज्ञानोंसे पुष्ट करते हैं—सब प्रकारके ज्ञानोंसे सम्पन्न करके उन्नत करते हैं तथा जिन्होंने सबसे पहले उत्पन्न होते हुए उन हिरण्यगर्भको देखा था, वे ही सर्वशक्तिमान् सर्वाधार सबके स्वामी परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं॥ २॥

एकैकं जालं बहुधा विकुर्व-
न्नस्मिन् क्षेत्रे संहरत्येष देवः।
भूयः सृष्ट्वा पतयस्तथेशः
सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा॥ ३॥

एषः=यह; **देवः**=परमदेव (परमेश्वर); **अस्मिन् क्षेत्रे**=इस जगत्-क्षेत्रमें; (सृष्टिके समय) **एकैकम्**=एक-एक; **जालम्**=जालको (बुद्धि आदि और आकाशादि तत्त्वोंको); **बहुधा**=बहुत प्रकारसे; **विकुर्वन्**=विभक्त करके; (उसका) **संहरति**=(प्रलयकालमें) संहार कर देता है; **महात्मा**=(वह) महामना; **ईशः**=ईश्वर; **भूयः**=पुनः (सृष्टिकालमें); **तथा**=पहलेकी भाँति; **पतयः सृष्ट्वा**=समस्त लोकपालोंकी रचना करके; **सर्वाधिपत्यम् कुरुते**=(स्वयं) सबपर आधिपत्य करता है॥ ३॥

व्याख्या—जिनका प्रकरण चल रहा है, वे परमदेव परमेश्वर इस जगत्-रूप क्षेत्रमें सृष्टिके समय एक-एक जालको अर्थात् बुद्धि आदि और आकाश आदि अपनी प्रकृतियोंको बहुत प्रकारसे विभक्त करके—प्रत्येक प्रकृतिको भिन्न-भिन्न रूप, नाम और शक्तियोंसे युक्त करके उनका विस्तार करते हैं और स्वयं ही प्रलयकालमें उन सबका संहार कर लेते हैं। वे महामना

* कुछ विद्वानोंने 'कपिल' शब्दको सांख्यशास्त्रके आदि वक्ता एवं प्रवर्तक भगवान् कपिलमुनिका वाचक माना है और इस प्रकार उनके द्वारा उपदिष्ट मतकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता सिद्ध की है।

परमेश्वर पुनः सृष्टिकालमें पहलेकी भाँति ही समस्त लोकोंकी और उनके अधिपतियोंकी रचना करके स्वयं उन सबके अधिष्ठाता बनकर उन सबपर शासन करते हैं। उनकी लीला अतर्क्य है, तर्कसे उसका रहस्य समझमें नहीं आ सकता। उनके सेवक ही उनकी लीलाके रहस्यको कुछ समझते हैं॥ ३॥

सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्
प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान्।
एवं स देवो भगवान् वरेण्यो
योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः ॥ ४ ॥

यत् उ=जिस प्रकार; **अनड्वान्**=सूर्य; (अकेला ही) **सर्वाः**=समस्त; **दिशः**=दिशाओंको; **ऊर्ध्वम् अधः**=ऊपर-नीचे; **च**=और; **तिर्यक्**=इधर-उधर—सब ओरसे; **प्रकाशयन्**=प्रकाशित करता हुआ; **भ्राजते**=देदीप्यमान होता है; **एवम्**=उसी प्रकार; **सः**=वह; **भगवान्**=भगवान्; **वरेण्यः देवः**=स्वामी बननेके योग्य (सर्वश्रेष्ठ) परमदेव परमेश्वर; **एकः**=अकेला ही; **योनिस्वभावान् अधितिष्ठति**=समस्त कारणरूप अपनी शक्तियोंपर आधिपत्य करता है॥ ४॥

व्याख्या—जिस प्रकार यह सूर्य समस्त दिशाओंको ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर—सब ओरसे प्रकाशित करता हुआ देदीप्यमान होता है, उसी प्रकार वे भगवान्—सर्वविध ऐश्वर्यसे सम्पन्न, सबके द्वारा भजनेयोग्य परमदेव परमेश्वर अकेले ही समस्त कारणरूप अपनी भिन्न-भिन्न शक्तियोंके अधिष्ठाता होकर उन सबका संचालन करते हैं, सबको अपना-अपना कार्य करनेकी सामर्थ्य देकर यथायोग्य कार्यमें प्रवृत्त करते हैं॥ ४॥

सम्बन्ध—*ऊपर कही हुई बातका इस मन्त्रमें स्पष्टीकरण किया जाता है*—

यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः
पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद् यः।
सर्वमेतद् विश्वमधितिष्ठत्येको
गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः॥ ५॥

यत्=जो; **विश्वयोनिः**=सबका परम कारण है; **च**=और; **स्वभावम्**=समस्त तत्त्वोंकी शक्तिरूप स्वभावको; **पचति**=(अपने संकल्परूप तपसे) पकाता है; **च**=तथा; **यः**=जो; **सर्वान्**=समस्त; **पाच्यान्**=पकाये जानेवाले पदार्थोंको; **परिणामयेत्**=नाना रूपोंमें परिवर्तित करता है; (और) **यः**=जो; **एकः**=अकेला ही; **सर्वान्**=समस्त; **गुणान् विनियोजयेत्**=गुणोंका जीवोंके साथ यथायोग्य संयोग कराता है; **च**=तथा; **एतत्**=इस; **सर्वम्**=समस्त; **विश्वम् अधितिष्ठति**=विश्वका शासन करता है (वह परमात्मा है) ॥ ५ ॥

व्याख्या—जो इस सम्पूर्ण विश्वके परम कारण हैं, अर्थात् जिनका और कोई कारण नहीं है, जगत्के कारणरूपसे कहे जानेवाले समस्त तत्त्वोंकी शक्तिरूप स्वभावको जो अपने संकल्परूप तपसे पकाते हैं—अर्थात् उन आकाशादि तत्त्वोंकी जो भिन्न-भिन्न शक्तियाँ प्रलयकालमें लुप्त हो गयी थीं, उन्हें अपने संकल्पद्वारा पुनः प्रकट करते हैं और उन प्रकट की हुई शक्तियोंका नाना रूपोंमें परिवर्तन कर इस विचित्र जगत्की रचना करते हैं तथा सत्त्व आदि तीनों गुणोंका तथा उनसे उत्पन्न हुए पदार्थोंका जीवोंके साथ उनके कर्मानुसार यथायोग्य सम्बन्ध स्थापित करते हैं—इस प्रकार जो अकेले ही इस सम्पूर्ण जगत्की सारी व्यवस्था करके इसपर शासन करते हैं, वे ही पूर्वमन्त्रमें कहे हुए सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वर हैं ॥ ५ ॥

तद् वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं
तद् ब्रह्मा वेदते ब्रह्मयोनिम् ।
ये पूर्वदेवा ऋषयश्च तद्विदु-
स्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः ॥ ६ ॥

तत्=वह; **वेदगुह्योपनिषत्सु**=वेदोंके रहस्यभूत उपनिषदोंमें; **गूढम्**=छिपा हुआ है; **ब्रह्मयोनिम्**=वेदोंके प्राकट्य-स्थान; **तत्**=उस परमात्माको; **ब्रह्मा**=ब्रह्मा; **वेदते**=जानता है; **ये**=जो; **पूर्वदेवाः**=पुरातन देवता; **च**=और; **ऋषयः**=ऋषिलोग; **तत्**=उसको; **विदुः**=जानते थे; **ते**=वे; **वै**=अवश्य ही; **तन्मयाः**=(उसमें) तन्मय होकर; **अमृताः**=अमृतरूप; **बभूवुः**=हो गये ॥ ६ ॥

व्याख्या—वे परब्रह्म परमात्मा वेदोंकी रहस्यविद्यारूप उपनिषदोंमें छिपे हुए हैं अर्थात् उनके स्वरूपका वर्णन उपनिषदोंमें गुप्तरूपसे किया गया है। वेद निकले भी उन्हींसे हैं—उन्हींके निःश्वासरूप हैं—'**यस्य निःश्वसितं वेदाः**'। इस प्रकार वेदोंमें छिपे हुए और वेदोंके प्राकट्य-स्थान उन परमात्माको ब्रह्माजी जानते हैं। उनके सिवा और भी जिन पूर्ववर्ती देवताओं और ऋषियोंने उनको जाना था, वे सब-के-सब उन्हींमें तन्मय होकर आनन्दस्वरूप हो गये। अतः मनुष्यको चाहिये कि उन सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सबके अधीश्वर परमात्माको उक्त प्रकारसे मानकर उन्हें जानने और पानेके लिये तत्पर हो जाय॥ ६॥

सम्बन्ध—*पाँचवें मन्त्रमें यह बात कही गयी थी कि परमेश्वर सब जीवोंका उनके कर्मानुसार गुणोंके साथ संयोग कराते हैं; अतः जीवात्माका स्वरूप और नाना योनियोंमें विचरनेका कारण आदि बतानेके लिये अलग प्रकरण आरम्भ किया जाता है—*

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता
कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता।
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा
प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः॥ ७॥

यः गुणान्वयः=जो गुणोंसे बँधा हुआ है; **सः**=वह; **फलकर्मकर्ता**=फलके उद्देश्यसे कर्म करनेवाला जीवात्मा; **एव**=ही; **तस्य**=उस; **कृतस्य**=अपने किये हुए कर्मके फलका; **उपभोक्ता**=उपभोग करनेवाला; **विश्वरूपः**=विभिन्न रूपोंमें प्रकट होनेवाला; **त्रिगुणः**=तीन गुणोंसे युक्त; **च**=और **त्रिवर्त्मा**=कर्मानुसार तीन मार्गोंसे गमन करनेवाला है; **सः**=वह; **प्राणाधिपः**=प्राणोंका अधिपति (जीवात्मा); **स्वकर्मभिः**=अपने कर्मोंसे प्रेरित होकर; **संचरति**=नाना योनियोंमें विचरता है॥ ७॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें प्रकरण आरम्भ करते ही जीवात्माके लिये '**गुणान्वयः**' विशेषण देकर यह भाव दिखाया गया है कि जो जीव गुणोंसे सम्बद्ध अर्थात् प्रकृतिमें स्थित है, वही इस जन्म-मरणरूप संसारचक्रमें घूमता

****

ही है (गीता १३। २१); जो गुणातीत हो गया है, वह नहीं घूमता। मन्त्रका सारांश यह है कि जो जीवात्मा सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे बँधा हुआ है (गीता १४। ५), वह नाना प्रकारके कर्मफलरूप भोगोंकी प्राप्तिके उद्देश्यसे नाना प्रकारके कर्म करता है और अपने किये हुए उन कर्मोंका फल भोगनेके लिये नाना योनियोंमें जन्म लेकर विभिन्न रूपोंमें प्रकट होता है और जहाँ भी जाता है, तीनों गुणोंसे युक्त रहता है। मृत्युके अनन्तर उसकी कर्मानुसार तीन गतियाँ होती हैं अर्थात् शरीर छोड़नेपर वह तीन मार्गोंसे जाता है। वे तीन मार्ग हैं—देवयान, पितृयान और तीसरा निरन्तर जन्म-मृत्युके चक्रमें घूमना* । वह प्राणोंका अधिपति जीवात्मा जबतक मुक्त नहीं हो जाता, तबतक अपने किये हुए कर्मोंसे प्रेरित होकर नाना लोकोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी योनियोंको ग्रहण करके इस संसारचक्रमें घूमता रहता है ॥ ७ ॥

सम्बन्ध—*जीवात्माका स्वरूप कैसा है, इस जिज्ञासापर कहते हैं*—

अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः
संकल्पाहंकारसमन्वितो यः ।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव
आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः ॥ ८ ॥

यः=जो; **अङ्गुष्ठमात्रः**=अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाला; **रवितुल्यरूपः**=सूर्यके समान प्रकाशस्वरूप; (तथा) **संकल्पाहंकारसमन्वितः**=संकल्प और अहङ्कारसे युक्त है; **बुद्धेः**=बुद्धिके; **गुणेन**=गुणके कारण; **च**=और;

---

* छान्दोग्य-उपनिषद्में ५। १०। २ से ८ तक और बृहदारण्यक० ६। २। १५-१६ में इन तीन मार्गोंका वर्णन आया है। देवयान-मार्गसे जानेवाले ब्रह्मलोकतक जाकर वहाँसे लौटते नहीं, ब्रह्माके साथ ही मुक्त हो जाते हैं; पितृयानसे जानेवाले स्वर्गमें जाकर चिरकालतक वहाँके दिव्य सुखोंका उपभोग करते हैं और पुण्य क्षीण हो जानेपर पुनः मृत्युलोकमें ढकेल दिये जाते हैं; और तीसरे मार्गसे जानेवाले कीट-पतङ्गादि क्षुद्र योनियोंमें भटकते रहते हैं।

आत्मगुणेन=अपने गुणके कारण; **एव**=ही; **आराग्रमात्रः**=सूजेकी नोकके जैसे सूक्ष्म आकारवाला है; **अपरः**=ऐसा अपर (अर्थात् परमात्मासे भिन्न जीवात्मा); **अपि**=भी; **हि**=निःसंदेह; **दृष्टः**=(ज्ञानियोंद्वारा) देखा गया है॥ ८॥

व्याख्या—मनुष्यका हृदय अँगूठेके नापका माना गया है और हृदयमें ही जीवात्माका निवास है। इसलिये उसे अङ्गुष्ठमात्र—अँगूठेके नापका कहा जाता है। उसका वास्तविक स्वरूप सूर्यकी भाँति प्रकाशमय (विज्ञानमय) है। उसे अज्ञानरूपी अन्धकार छूतक नहीं गया है। वह संकल्प और अहंकार—इन दोनोंसे युक्त हो रहा है, अतः संकल्परूप बुद्धिके गुणसे अर्थात् अन्तःकरण और इन्द्रियोंके धर्मोंसे तथा अहंतारूप अपने गुणसे अर्थात् अहंता-ममता आदिसे सम्बद्ध होनेके कारण सूजेकी नोकके समान सूक्ष्म आकारवाला है और परमात्मासे भिन्न है। जीवके तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंने गुणोंसे युक्त हुए जीवात्माका स्वरूप ऐसा ही देखा है।* तात्पर्य यह कि आत्माका स्वरूप वास्तवमें अत्यन्त सूक्ष्म है; सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म जड पदार्थ उसकी तुलनामें स्थूल ही ठहरता है। उसकी सूक्ष्मता किसी भी जड पदार्थके परिमाणसे नहीं मापी जा सकती। केवल उसका लक्ष्य करानेके लिये उसे सम्बद्ध वस्तुके आकारका बताया जाता है। हृदय-देशमें स्थित होनेके कारण उसे अङ्गुष्ठपरिमाण कहा जाता है और बुद्धिगुण तथा आत्मगुणके सम्बन्धसे उसे सूजेकी नोकके आकारका बताया जाता है। बुद्धि आदिको सूईकी नोकके समान कहा गया है, इसीसे जीवात्माको यहाँ सूजेकी नोकके सदृश बताया गया है॥ ८॥

सम्बन्ध—*पूर्वमन्त्रमें जो जीवात्माका स्वरूप सूजेकी नोकके सदृश सूक्ष्म बताया गया है, उसे पुनः स्पष्ट करते हैं—*

---

* गीतामें भी कहा है कि एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जानेवाले, शरीरमें स्थित रहनेवाले अथवा विषयोंको भोगनेवाले इस गुणान्वित जीवात्माको मूर्ख नहीं जानते, ज्ञानरूप नेत्रोंवाले ज्ञानी जानते हैं (१५। १०)।

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥ ९॥

वालाग्रशतभागस्य=बालकी नोकके सौवें भागके; **च**=पुनः; **शतधा**=सौ भागोंमें; **कल्पितस्य**=कल्पना किये जानेपर; **भागः**=जो एक भाग होता है; **सः**=वही (उसीके बराबर); **जीवः**=जीवका स्वरूप; **विज्ञेयः**=समझना चाहिये; **च**=और; **सः**=वह; **आनन्त्याय**=असीम भाववाला होनेमें; **कल्पते**=समर्थ है॥ ९॥

व्याख्या—पूर्वमन्त्रमें जीवात्माका स्वरूप सूजेकी नोकके सदृश सूक्ष्म बताया गया है; उसे समझनेमें भ्रम हो सकता है, अतः उसे भलीभाँति समझानेके लिये पुनः इस प्रकार कहते हैं। मान लीजिये, एक बालकी नोकके हम सौ टुकड़े कर लें; फिर उनमेंसे एक टुकड़ेके पुनः सौ टुकड़े कर लें। उनमेंसे एक टुकड़ा जितना सूक्ष्म हो सकता है, अर्थात् बालकी नोकके दस हजार भाग करनेपर उनमेंसे एक भाग जितना सूक्ष्म हो सकता है, उसके समान जीवात्माका स्वरूप समझना चाहिये। यह कहना भी केवल उसकी सूक्ष्मताका लक्ष्य करानेके लिये ही है। वास्तवमें चेतन और सूक्ष्म वस्तुका स्वरूप जड और स्थूल वस्तुकी उपमासे नहीं समझाया जा सकता; क्योंकि बालकी नोकके दस हजार भागोंमेंसे एक भाग भी आकाशमें जितने देशको रोकता है, उतना भी जीवात्मा नहीं रोकता। चेतन और सूक्ष्म वस्तुका जड और स्थूल देशके साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता; वह सूक्ष्म होनेपर भी स्थूल वस्तुमें सर्वत्र व्याप्त रह सकता है। इसी भावको समझानेके लिये अन्तमें कहा गया है कि वह इतना सूक्ष्म होनेपर भी अनन्त भावसे युक्त होनेमें अर्थात् असीम होनेमें समर्थ है। भाव यह कि वह जड जगत्में सर्वत्र व्याप्त है। केवल बुद्धिके गुण संकल्पसे और अपने गुणरूप अहंकारसे युक्त होनेके कारण ही एकदेशीय बन रहा है॥ ९॥

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद् यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते॥ १०॥

एषः=यह जीवात्मा; **न**=न; **एव**=तो; **स्त्री**=स्त्री है; **न**=न; **पुमान्**=पुरुष है;

च=और; **न**=न; **अयम्**=यह; **नपुंसकः एव**=नपुंसक ही है; **सः**=वह; **यत् यत्**=जिस-जिस; **शरीरम्**=शरीरको; **आदत्ते**=ग्रहण करता है; **तेन तेन**=उस-उससे; **युज्यते**=सम्बद्ध हो जाता है ॥ १० ॥

व्याख्या—जीवात्मा वास्तवमें न तो स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है। यह जब जिस शरीरको ग्रहण करता है, उस समय उससे संयुक्त होकर वैसा ही बन जाता है। जो जीवात्मा आज स्त्री है, वही दूसरे जन्ममें पुरुष हो सकता है; जो पुरुष है, वह स्त्री हो सकता है। भाव यह कि ये स्त्री, पुरुष और नपुंसक आदि भेद शरीरको लेकर हैं; जीवात्मा सर्वभेदशून्य है, सारी उपाधियोंसे रहित है ॥ १० ॥

संकल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहै-
र्ग्रासाम्बुवृष्ट्या चात्मविवृद्धिजन्म ।
कर्मानुगान्यनुक्रमेण देही
स्थानेषु रूपाण्यभिसम्प्रपद्यते ॥ ११ ॥

संकल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैः=संकल्प, स्पर्श, दृष्टि और मोहसे; **च**=तथा; **ग्रासाम्बुवृष्ट्या**=भोजन, जलपान और वर्षाके द्वारा; **आत्मविवृद्धिजन्म**=(प्राणियोंके) सजीव शरीरकी वृद्धि और जन्म होते हैं; **देही**=यह जीवात्मा; **स्थानेषु**=भिन्न-भिन्न लोकोंमें; **कर्मानुगानि**=कर्मानुसार मिलनेवाले; **रूपाणि**=भिन्न-भिन्न शरीरोंको; **अनुक्रमेण**=अनुक्रमसे; **अभिसम्प्रपद्यते**=बार-बार प्राप्त होता रहता है ॥ ११ ॥

व्याख्या—संकल्प, स्पर्श, दृष्टि, मोह, भोजन, जलपान और वृष्टि—इन सबसे सजीव शरीरकी वृद्धि और जन्म होते हैं। इसका एक भाव तो यह है कि स्त्री-पुरुषके परस्पर मोहपूर्वक संकल्प, स्पर्श और दृष्टिपातके द्वारा सहवास होनेपर जीवात्मा गर्भमें आता है; फिर माताके भोजन और जलपानसे बने हुए रसके द्वारा उसकी वृद्धि होकर जन्म होता है। दूसरा भाव यह है कि भिन्न-भिन्न योनियोंमें जीवोंकी उत्पत्ति और वृद्धि भिन्न-भिन्न प्रकारसे होती है। किसी योनिमें तो संकल्पमात्रसे ही जीवोंका पोषण होता रहता है, जैसे कछुएके

अंडोंका; किसी योनिमें आसक्तिपूर्वक स्पर्शसे होता है, जैसे पक्षियोंके अंडोंका; किसी योनिमें केवल आसक्तिपूर्वक दर्शनमात्रसे ही होता है, जैसे मछली आदिका; किसी योनिमें अन्नभक्षणसे और जलपानसे होता है, जैसे मनुष्य-पशु आदिका और किसी योनिमें वृष्टिमात्रसे ही हो जाता है, जैसे वृक्ष-लता आदिका। इस प्रकार नाना प्रकारसे सजीव शरीरोंका पालन-पोषण, तुष्टि-पुष्टिरूप वृद्धि और जन्म होते हैं। जीवात्मा अपने कर्मोंके अनुसार उनका फल भोगनेके लिये इसी प्रकार विभिन्न लोकोंमें गमन करता हुआ एकके बाद एकके क्रमसे नाना शरीरोंको बार-बार धारण करता रहता है॥ ११॥

सम्बन्ध—*इसका बार-बार नाना योनियोंमें आवागमन क्यों होता है, इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव
रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति।
क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां
संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः॥ १२॥

देही=जीवात्मा; **क्रियागुणैः**=अपने कर्मोंके (संस्काररूप) गुणोंसे; **च**=तथा; **आत्मगुणैः**=शरीरके गुणोंसे (युक्त होनेके कारण); **स्वगुणैः**=अहंता, ममता आदि अपने गुणोंके वशीभूत होकर; **स्थूलानि**=स्थूल; **च**=और; **सूक्ष्माणि**=सूक्ष्म; **बहूनि एव**=बहुत-से; **रूपाणि**=रूपों (आकृतियों, शरीरों) को; **वृणोति**=स्वीकार करता है; **तेषाम्**=उनके; **संयोगहेतुः**=संयोगका कारण; **अपरः**=दूसरा; **अपि**=भी; **दृष्टः**=देखा गया है॥ १२॥

व्याख्या—जीवात्मा अपने किये हुए कर्मोंके संस्कारोंसे और बुद्धि, मन, इन्द्रिय तथा पञ्चभूत—इनके समुदायरूप शरीरके धर्मोंसे युक्त होनेके कारण अहंता-ममता आदि अपने गुणोंके वशीभूत होकर अनेकानेक शरीर धारण करता है। अर्थात् शरीरके धर्मोंमें अहंता-ममता करके तद्रूप हो जानेके कारण नाना प्रकारके स्थूल और सूक्ष्म रूपोंको स्वीकार करता है—अपने कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म लेता है। परंतु इस प्रकार जन्म लेनेमें

यह स्वतन्त्र नहीं है, इससे संकल्प और कर्मोंके अनुसार उन-उन योनियोंसे इसका सम्बन्ध जोड़नेवाला कोई दूसरा ही है। वे हैं पूर्वोक्त परमेश्वर, जिन्हें तत्त्वज्ञानी महापुरुषोंने देखा है। वे इस रहस्यको भलीभाँति जानते हैं। यहाँ कर्मोंके संस्कारोंका नाम क्रिया-गुण है, समस्त तत्त्वोंके समुदायरूप शरीरको देखना, सुनना, समझना आदि शक्तियोंका नाम आत्मगुण है और इनके सम्बन्धसे जीवात्मामें जो अहंता, ममता, आसक्ति आदि आ जाते हैं, उनका नाम स्वगुण है॥ १२॥

सम्बन्ध—*अनादिकालसे चले आते हुए इस जन्म-मरणरूप बन्धनसे छूटनेका क्या उपाय है, इस जिज्ञासापर कहा जाता है—*

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ १३॥

कलिलस्य=कलिल (दुर्गम संसार) के; **मध्ये**=भीतर व्याप्त; **अनाद्यनन्तम्**=आदि-अन्तसे रहित; **विश्वस्य स्रष्टारम्**=समस्त जगत्‌की रचना करनेवाले; **अनेकरूपम्**=अनेकरूपधारी; (तथा) **विश्वस्य परिवेष्टितारम्**=समस्त जगत्‌को सब ओरसे घेरे हुए; **एकम्**=एक (अद्वितीय); **देवम्**=परमदेव परमेश्वरको; **ज्ञात्वा**=जानकर; (मनुष्य) **सर्वपाशैः**=समस्त बन्धनोंसे; **मुच्यते**=सर्वथा मुक्त हो जाता है॥ १३॥

व्याख्या—पूर्वमन्त्रमें जिनको इस जीवात्माका नाना योनियोंके साथ सम्बन्ध जोड़नेवाला बताया गया है, जो अन्तर्यामीरूपसे मनुष्यके हृदयरूप गुहामें स्थित तथा निराकाररूपसे इस समस्त जगत्‌में व्याप्त हैं, जिनका न तो आदि है और न अन्त ही है, अर्थात् जो उत्पत्ति, विनाश और वृद्धि-क्षय आदि सब प्रकारके विकारोंसे सर्वथा शून्य—सदा एक-रस रहनेवाले हैं, तथापि जो समस्त जगत्‌की रचना करके विविध रूपोंमें प्रकट होते हैं और जिन्होंने इस समस्त जगत्‌को सब ओरसे घेर रखा है, उन एकमात्र सर्वाधार, सर्वशक्तिमान्,

सबका शासन करनेवाले, सर्वेश्वर परब्रह्म पुरुषोत्तमको जानकर यह जीवात्मा सदाके लिये समस्त बन्धनोंसे सर्वथा छूट जाता है॥ १३ ॥

सम्बन्ध—*अब अध्यायके उपसंहारमें ऊपर कही हुई बातको पुनः स्पष्ट करते हुए परमात्माकी प्राप्तिका उपाय बताया जाता है—*

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम्।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्॥ १४॥

भावग्राह्यम्=श्रद्धा और भक्तिके भावसे प्राप्त होने योग्य; **अनीडाख्यम्**=आश्रयरहित कहे जानेवाले; (तथा) **भावाभावकरम्**=जगत्‌की उत्पत्ति और संहार करनेवाले; **शिवम्**=कल्याणस्वरूप; (तथा) **कलासर्गकरम्**=सोलह कलाओंकी रचना करनेवाले; **देवम्**=परमदेव परमेश्वरको; **ये**=जो साधक; **विदुः**=जान लेते हैं; **ते**=वे; **तनुम्**=शरीरको; (सदाके लिये) **जहुः**=त्याग देते हैं—जन्म-मृत्युके चक्करसे छूट जाते हैं॥ १४॥

व्याख्या—वे परब्रह्म परमेश्वर आश्रयरहित अर्थात् शरीररहित हैं; यह प्रसिद्ध है; तथा वे जगत्‌की उत्पत्ति और संहार करनेवाले तथा (प्रश्नोपनिषद् ६।६।४ में बतायी हुई) सोलह कलाओंको भी उत्पन्न करनेवाले हैं। ऐसा होनेपर भी वे कल्याणस्वरूप आनन्दमय परमेश्वर श्रद्धा, भक्ति और प्रेमभावसे पकड़े जा सकते हैं; जो मनुष्य उन परमदेव परमेश्वरको जान लेते हैं, वे शरीरसे अपना सम्बन्ध सदाके लिये छोड़ देते हैं अर्थात् इस संसार-चक्रसे सदाके लिये छूट जाते हैं।

इस रहस्यको समझकर मनुष्यको जितना शीघ्र हो सके, उन परम सुहृद्, परम दयालु, परम प्रेमी, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सर्वेश्वर परमात्माको जानने और पानेके लिये व्याकुल हो श्रद्धा और भक्तिभावसे उनकी आराधनामें लग जाना चाहिये॥ १४॥

॥ पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥



षष्ठ अध्याय

स्वभावमेके कवयो वदन्ति
कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः ।
देवस्यैष महिमा तु लोके
येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ॥ १ ॥

एके=कितने ही; **कवयः**=बुद्धिमान् लोग; **स्वभावम्**=स्वभावको; **वदन्ति**=जगत्का कारण बताते हैं; **तथा**=उसी प्रकार; **अन्ये**=कुछ दूसरे लोग; **कालम्**=कालको जगत्का कारण बतलाते हैं; **[एते] परिमुह्यमानाः [सन्ति]**=(वास्तवमें) ये लोग मोहग्रस्त हैं (अतः वास्तविक कारणको नहीं जानते); **तु**=वास्तवमें तो; **एषः**=यह; **देवस्य**=परमदेव परमेश्वरकी; **लोके**=समस्त जगत्में फैली हुई; **महिमा**=महिमा है; **येन**=जिसके द्वारा; **इदम्**=यह; **ब्रह्मचक्रम्**=ब्रह्मचक्र; **भ्राम्यते**=घुमाया जाता है ॥ १ ॥

व्याख्या—कितने ही बुद्धिमान् लोग तो कहते हैं कि इस जगत्का कारण स्वभाव है। अर्थात् पदार्थोंमें जो स्वाभाविक शक्ति है—जैसे अग्निमें प्रकाशन-शक्ति और दाह-शक्ति वही इस जगत्का कारण है। कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि काल ही जगत्का कारण है; क्योंकि समयपर ही वस्तुगत शक्तिका प्राकट्य होता है, जैसे वृक्षमें फल आदि उत्पन्न करनेकी शक्ति समयपर ही प्रकट होती है। इसी प्रकार स्त्रियोंमें गर्भाधान ऋतुकालमें ही होता है, असमयमें नहीं होता—यह प्रत्यक्ष देखा जाता है। परंतु अपनेको पण्डित समझनेवाले ये वैज्ञानिक मोहमें पड़े हुए हैं, अतः ये इस जगत्के वास्तविक कारणको नहीं जानते। वास्तवमें तो यह परमदेव सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी ही महिमा है, जगत्की विचित्र रचनाको देखने और उसपर विचार करनेपर उन्हींका महत्त्व प्रकट होता है। वे स्वभाव और काल आदि समस्त कारणोंके अधिपति हैं और उन्हींके द्वारा यह संसार-चक्र घुमाया जाता है। इस रहस्यको समझकर इस चक्रसे छुटकारा पानेके लिये उन्हींकी शरण लेनी चाहिये। संसार-चक्रकी व्याख्या १।४ में की गयी है॥ १ ॥

येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं
ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः।
तेनेशितं कर्म विवर्तते ह
पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखानि चिन्त्यम् ॥ २ ॥

येन=जिस परमेश्वरसे; **इदम्**=यह; **सर्वम्**=सम्पूर्ण जगत्; **नित्यम्**=सदा; **आवृतम्**=व्याप्त है; **यः**=जो; **ज्ञः**=ज्ञानस्वरूप परमेश्वर; **हि**=निश्चय ही; **कालकालः**=कालका भी महाकाल; **गुणी**=सर्वगुणसम्पन्न; (और) **सर्ववित्**=सबको जाननेवाला है; **तेन**=उससे; **ह**=ही; **ईशितम्**=शासित हुआ; **कर्म**=यह जगत्‌रूप कर्म; **विवर्तते**=विभिन्न प्रकारसे यथायोग्य चल रहा है; (और ये) **पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखानि**=पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश भी (उसीके द्वारा शासित होते हैं); **[इति]**=इस प्रकार; **चिन्त्यम्**=चिन्तन करना चाहिये ॥ २ ॥

व्याख्या—जिन जगन्नियन्ता जगदाधार परमेश्वरसे यह सम्पूर्ण जगत् सदा—सभी अवस्थाओंमें सर्वथा व्याप्त है, जो कालके भी महाकाल हैं—अर्थात् जो कालकी सीमासे परे हैं, जो ज्ञानस्वरूप चिन्मय परमात्मा सुहृदता आदि समस्त दिव्य गुणोंसे नित्य सम्पन्न हैं, समस्त गुण जिसके स्वरूपभूत और चिन्मय हैं, जो समस्त ब्रह्माण्डोंको भली प्रकारसे जानते हैं, उन्हींका चलाया हुआ यह जगत्-चक्र नियमपूर्वक चल रहा है। वे ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँचों महाभूतोंपर शासन करते हुए इनको अपना-अपना कार्य करनेकी शक्ति देकर इनसे कार्य करवाते हैं। उनकी शक्तिके बिना ये कुछ भी नहीं कर सकते, यह बात केनोपनिषद्‌के तीसरे खण्डमें यक्षके आख्यानद्वारा भलीभाँति समझायी गयी है। इस रहस्यको समझकर मनुष्यको उन सर्वशक्तिमान् परमेश्वरका उपर्युक्त भावसे चिन्तन करना चाहिये ॥ २ ॥

तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूय-
स्तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्य योगम्।
एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा
कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः ॥ ३ ॥

(परमात्माने ही) **तत्**=उस (जडतत्त्वोंकी रचनारूप); **कर्म**=कर्मको; **कृत्वा**=करके; **विनिवर्त्य**=उसका निरीक्षण कर; **भूयः**=फिर; **तत्त्वस्य**=चेतनतत्त्वका; **तत्त्वेन**=जड-तत्त्वसे; **योगम्**=संयोग; **समेत्य**=कराके; **वा**=अथवा यों समझिये कि; **एकेन**=एक (अविद्या) से; **द्वाभ्याम्**=दो (पुण्य और पापरूप कर्मों) से; **त्रिभिः**=तीन गुणोंसे; **च**=और; **अष्टभिः**=आठ प्रकृतियोंके साथ; **कालेन**=कालके साथ; **च**=तथा; **सूक्ष्मैः आत्मगुणैः**=आत्मसम्बन्धी सूक्ष्म गुणोंके साथ; **एव**=भी; **[योगम् समेत्य]**=इस जीवका सम्बन्ध कराके (इस जगत्की रचना की है) ॥ ३ ॥

व्याख्या—परमेश्वरने ही अपनी शक्तिभूता मूलप्रकृतिसे पाँचों स्थूल महाभूत आदिकी रचनारूप कर्म करके उसका निरीक्षण किया, फिर जड-तत्त्वके साथ चेतन तत्त्वका संयोग कराके नाना रूपोंमें अनुभव होनेवाले विचित्र जगत्की रचना की।* अथवा इस प्रकार समझना चाहिये कि एक अविद्या, दो पुण्य और पापरूप संचित कर्म-संस्कार, सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण और एक काल तथा मन, बुद्धि, अहंकार, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये आठ प्रकृतिभेद, इन सबसे तथा अहंता, ममता, आसक्ति आदि आत्मसम्बन्धी सूक्ष्म गुणोंसे जीवात्माका सम्बन्ध कराके इस जगत्की रचना की। इन दोनों प्रकारके वर्णनोंका तात्पर्य एक ही है ॥ ३ ॥

सम्बन्ध—*इस रहस्यको समझकर साधकको क्या करना चाहिये, इस जिज्ञासापर कहा जाता है*—

आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि
भावांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः
कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः ॥ ४ ॥

---

* इसका वर्णन तैत्तिरीय-उपनिषद् (ब्रह्मानन्दवल्ली अनुवाक १ और ६) में, ऐतरेयोपनिषद् (अध्याय १ के तीनों खण्डों)में, छान्दोग्योपनिषद् (अध्याय ६, खण्ड २-३)में और बृहदारण्यकोपनिषद् (अध्याय १, ब्राह्मण २) में विस्तारपूर्वक आया है।

****

यः=जो साधक; **गुणान्वितानि**=सत्त्वादि गुणोंसे व्याप्त; **कर्माणि**=कर्मोंको; **आरभ्य**=आरम्भ करके; (उनको) **च**=तथा; **सर्वान्**=समस्त; **भावान्**=भावोंको; **विनियोजयेत्**=परमात्मामें लगा देता है—उसीके समर्पण कर देता है; (उसके इस समर्पणसे) **तेषाम्**=उन कर्मोंका; **अभावे**=अभाव हो जानेपर; (उस साधकके) **कृतकर्मनाशः**=पूर्वसंचित कर्म-समुदायका भी सर्वथा नाश हो जाता है; **कर्मक्षये**=(इस प्रकार) कर्मोंका नाश हो जानेपर; **सः**=वह साधक; **याति**=परमात्माको प्राप्त हो जाता है; (क्योंकि वह जीवात्मा) **तत्त्वतः**=वास्तवमें; **अन्यः**=समस्त जड-समुदायसे भिन्न (चेतन) है ॥ ४ ॥

व्याख्या—जो कर्मयोगी सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे व्याप्त अपने वर्ण, आश्रम और परिस्थितिके अनुकूल कर्तव्यकर्मोंका आरम्भ करके उनको और अपने सब प्रकारके अहंता, ममता, आसक्ति आदि भावोंको उन परब्रह्म परमेश्वरमें लगा देता है, उनके समर्पण कर देता है, उस समर्पणसे उन कर्मोंके साथ साधकका सम्बन्ध न रहनेके कारण वे उसे फल नहीं देते। इस प्रकार उनका अभाव हो जानेसे पहले किये हुए संचित कर्म-संस्कारोंका भी सर्वथा नाश हो जाता है। इस प्रकार कर्मोंका नाश हो जानेसे वह तुरंत परमात्माको प्राप्त हो जाता है; क्योंकि यह जीवात्मा वास्तवमें जड तत्त्वसमुदायसे सर्वथा भिन्न एवं अत्यन्त विलक्षण है। उनके साथ इसका सम्बन्ध अहंता-ममता आदिके कारण ही है, स्वाभाविक नहीं है ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—*कर्मयोगका वर्णन करके अब उपासनारूप दूसरा साधन बताया जाता है—*

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः
परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः ।
तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं
देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ॥ ५ ॥

सः=वह; **आदिः**=आदि कारण (परमात्मा); **त्रिकालात् परः**=तीनों कालोंसे सर्वथा अतीत; (एवं) **अकलः**=कलारहित (होनेपर); **अपि**=भी; **संयोगनिमित्तहेतुः**=प्रकृतिके साथ जीवका संयोग करानेमें कारणोंका भी

कारण; **दृष्टः**=देखा गया है; **स्वचित्तस्थम्**=अपने अन्तःकरणमें स्थित; **तम्**=उस; **विश्वरूपम्**=सर्वरूप; (एवं) **भवभूतम्**=जगत्-रूपमें प्रकट; **ईड्यम्**=स्तुति करनेयोग्य; **पूर्वम्**=पुराणपुरुष; **देवम् उपास्य**=परम देव (परमेश्वर) की उपासना करके (उसे प्राप्त करना चाहिये) ॥ ५ ॥

व्याख्या—वे समस्त जगत्के आदि कारण सर्वशक्तिमान् परमेश्वर तीनों कालोंसे सर्वथा अतीत हैं। उनमें कालका कोई भेद नहीं है, भूत और भविष्य भी उनकी दृष्टिमें वर्तमान ही हैं। वे (प्रश्नोपनिषद्में बतायी हुई) सोलह कलाओंसे रहित होनेपर भी अर्थात् संसारसे सर्वथा सम्बन्धरहित होते हुए भी प्रकृतिके साथ जीवका संयोग करानेवाले कारणके भी कारण हैं। यह बात इस रहस्यको जाननेवाले ज्ञानी महापुरुषोंद्वारा देखी गयी है। वे परमेश्वर ही एकमात्र स्तुति करनेयोग्य हैं। उन्हें ढूँढ़नेके लिये कहीं दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है। वे हमारे हृदयमें ही स्थित हैं। इस बातपर दृढ़ विश्वास करके सब प्रकारके रूप धारण करनेवाले तथा जगत्-रूपमें प्रकट हुए, सर्वाधार, सर्वशक्तिमान्, परम देव पुराणपुरुष परमेश्वरकी उपासना करके उन्हें प्राप्त करना चाहिये ॥ ५ ॥

सम्बन्ध—*अब ज्ञानयोगरूप तीसरा साधन बताया जाता है*—

स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो
यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम्।
धर्मावहं पापनुदं भगेशं
ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ॥ ६ ॥

यस्मात्=जिससे; **अयम्**=यह; **प्रपञ्चः**=प्रपञ्च (संसार); **परिवर्तते**=निरन्तर चलता रहता है; **सः**=वह (परमात्मा); **वृक्षकालाकृतिभिः**=इस संसारवृक्ष, काल और आकृति आदिसे; **परः**=सर्वथा अतीत; (एवं) **अन्यः**=भिन्न है; (उस) **धर्मावहम्**=धर्मकी वृद्धि करनेवाले; **पापनुदम्**=पापका नाश करनेवाले; **भगेशम्**=सम्पूर्ण ऐश्वर्यके अधिपति; (तथा) **विश्वधाम**=समस्त जगत्के आधारभूत परमात्माको; **आत्मस्थम्**=अपने हृदयमें स्थित; **ज्ञात्वा**=

जानकर; (साधक) **अमृतम् [एति]**=अमृतस्वरूप परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥

व्याख्या—जिनकी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे यह प्रपञ्चरूप संसार निरन्तर घूम रहा है—प्रवाहरूपसे सदा चलता रहता है, वे परमात्मा इस संसारवृक्ष, काल और आकृति आदिसे सर्वथा अतीत और भिन्न हैं अर्थात् वे संसारसे सर्वथा सम्बन्धरहित, कालका भी ग्रास कर जानेवाले एवं आकाररहित हैं; तथापि वे धर्मकी वृद्धि एवं पापका नाश करनेवाले, समस्त ऐश्वर्योंके अधिपति और समस्त जगत्के आधार हैं। यह सम्पूर्ण विश्व उन्हींके आश्रित है, उन्हींकी सत्तासे टिका हुआ है। अन्तर्यामीरूपसे वे हमारे हृदयमें भी हैं। इस प्रकार उन्हें जानकर ज्ञानयोगी उन अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥

सम्बन्ध—*पहले अध्यायमें जिनका वर्णन आया है, वे ध्यानके द्वारा परमात्माका प्रत्यक्ष करनेवाले महात्मा कहते हैं—*

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥ ७ ॥

तम्=उस; **ईश्वराणाम्**=ईश्वरोंके भी; **परमम्**=परम; **महेश्वरम्**=महेश्वर; **देवतानाम्**=सम्पूर्ण देवताओंके; **च**=भी; **परमम्**=परम; **दैवतम्**=देवता; **पतीनाम्**=पतियोंके भी; **परमम्**=परम; **पतिम्**=पति; (तथा) **भुवनेशम्**=समस्त ब्रह्माण्डके स्वामी; (एवं) **ईड्यम्**=स्तुति करनेयोग्य; **तम्**=उस; **देवम्**=प्रकाशस्वरूप परमात्माको; (हमलोग) **परस्तात्**=सबसे परे; **विदाम**=जानते हैं ॥ ७ ॥

व्याख्या—वे परब्रह्म पुरुषोत्तम समस्त ईश्वरोंके—लोकपालोंके भी महान् शासक हैं, अर्थात् वे सब भी उन महेश्वरके अधीन रहकर जगत्का शासन करते हैं। समस्त देवताओंके भी वे परम आराध्य हैं, समस्त पतियों—

रक्षकोंके भी परम पति हैं तथा समस्त ब्रह्माण्डोंके स्वामी हैं। उन स्तुति करनेयोग्य प्रकाशस्वरूप परम देव परमात्माको हमलोग सबसे पर जानते हैं। उनसे पर अर्थात् श्रेष्ठ और कोई नहीं है। वे ही इस जगत्के सर्वश्रेष्ठ कारण हैं और वे सर्वरूप होकर भी सबसे सर्वथा पृथक् हैं॥ ७॥

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥ ८॥

तस्य=उसके; **कार्यम्**=(शरीररूप) कार्य; **च**=और; **करणम्**=अन्तःकरण तथा इन्द्रियरूप करण; **न**=नहीं; **विद्यते**=है; **अभ्यधिकः**=उससे बड़ा; **च**=और; **तत्समः**=उसके समान; **च**=भी; (दूसरा) **न**=नहीं; **दृश्यते**=दीखता; **च**=तथा; **अस्य**=इस परमेश्वरकी; **ज्ञानबलक्रिया**=ज्ञान, बल और क्रियारूप; **स्वाभाविकी**=स्वाभाविक; **परा**=दिव्य; **शक्तिः**=शक्ति; **विविधा**=नाना प्रकारकी; **एव**=ही; **श्रूयते**=सुनी जाती है॥ ८॥

व्याख्या—उन परब्रह्म परमात्माके जीवोंकी भाँति कार्य और करण—शरीर और इन्द्रियाँ नहीं हैं; अर्थात् उनमें देह, इन्द्रिय आदिका भेद नहीं है। तीसरे अध्यायमें यह बात विस्तारपूर्वक बतायी गयी है कि वे इन्द्रियोंके बिना ही समस्त इन्द्रियोंका व्यापार करते हैं। उनसे बड़ा तो दूर रहा, उनके समान भी दूसरा कोई नहीं दीखता; वास्तवमें उनसे भिन्न कोई है ही नहीं। उन परमेश्वरकी ज्ञान, बल, और क्रियारूप स्वरूपभूत दिव्य शक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है॥ ८॥

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः॥ ९॥

लोके=जगत्में; **कश्चित्**=कोई भी; **तस्य**=उस परमात्माका; **पतिः**=स्वामी;

न=नहीं; **अस्ति**=है; **ईशिता**=उसका शासक; **च**=भी; **न**=नहीं है; **च**=और; **तस्य**=उसका; **लिङ्गम्**=चिह्नविशेष भी; **न एव**=नहीं है; **सः**=वह; **कारणम्**=सबका परम कारण; (तथा) **करणाधिपाधिपः**=समस्त करणोंके अधिष्ठाताओंका भी अधिपति है; **कश्चित्**=कोई भी; **न**=न; **च**=तो; **अस्य**=इसका; **जनिता**=जनक है; **च**=और; **न**=न; **अधिपः**=स्वामी ही है ॥ ९ ॥

व्याख्या—जगत्में कोई भी उन परमात्माका स्वामी नहीं है। सभी उनके दास और सेवक हैं। उनका शासक—उनपर आज्ञा चलानेवाला भी कोई नहीं है। सब उन्हींकी आज्ञा और प्रेरणाका अनुसरण करते और उनके नियन्त्रणमें रहते हैं। उनका कोई चिह्नविशेष भी नहीं है; क्योंकि वे सर्वत्र परिपूर्ण, निराकार हैं तथा वे सबके परम कारण—कारणोंके भी कारण और समस्त अन्तःकरण और इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ-देवताओंके भी अधिपति—शासक हैं। इन परब्रह्म परमात्माका न तो कोई जनक—अर्थात् इन्हें उत्पन्न करनेवाला पिता है और न कोई इनका अधिपति ही है। ये अजन्मा, सनातन, सर्वथा स्वतन्त्र और सर्वशक्तिमान् हैं ॥ ९ ॥

यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतो देव एकः स्वमावृणोत्। स नो दधाद्ब्रह्माप्ययम् ॥ १० ॥

तन्तुभिः=तन्तुओंद्वारा; **तन्तुनाभः इव**=मकड़ीकी भाँति; **यः एकः देवः**=जिस एक देव (परमात्मा) ने; **प्रधानजैः**=अपनी स्वरूपभूत मुख्य शक्तिसे उत्पन्न अनन्त कार्योंद्वारा; **स्वभावतः**=स्वभावसे ही; **स्वम्**=अपनेको; **आवृणोत्**=आच्छादित कर रखा है; **सः**=वह परमेश्वर; **नः**=हमलोगोंको; **ब्रह्माप्ययम्**=अपने परब्रह्म रूपमें आश्रय; **दधात्**=दे ॥ १० ॥

व्याख्या—जिस प्रकार मकड़ी अपनेसे प्रकट किये हुए तन्तुजालसे स्वयं आच्छादित हो जाती है—उसमें अपनेको छिपा लेती है, उसी प्रकार जिन एक देव परमपुरुष परमेश्वरने अपनी स्वरूपभूत मुख्य एवं दिव्य अचिन्त्यशक्तिसे उत्पन्न अनन्त कार्योंद्वारा स्वभावसे ही अपनेको आच्छादित कर रखा है, जिसके कारण संसारी जीव उन्हें देख नहीं पाते, वे सर्वशक्तिमान्

सर्वाधार परमात्मा हमलोगोंको सबके परम आश्रयभूत अपने परब्रह्मस्वरूपमें स्थापित करें॥ १०॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥ ११॥

एकः=(वह) एक; **देवः**=देव ही; **सर्वभूतेषु**=सब प्राणियोंमें; **गूढः**=छिपा हुआ; **सर्वव्यापी**=सर्वव्यापी; (और) **सर्वभूतान्तरात्मा**=समस्त प्राणियोंका अन्तर्यामी परमात्मा है; **कर्माध्यक्षः**=(वही) सबके कर्मोंका अधिष्ठाता; **सर्वभूताधिवासः**=सम्पूर्ण भूतोंका निवासस्थान; **साक्षी**=सबका साक्षी; **चेता**=चेतनस्वरूप [और सबको चेतना प्रदान करनेवाला]; **केवलः**=सर्वथा विशुद्ध; (और) **निर्गुणः च**=गुणातीत भी है॥ ११॥

व्याख्या—वे एक ही परमदेव परमेश्वर समस्त प्राणियोंके हृदयरूप गुहामें छिपे हुए हैं, वे सर्वव्यापी और समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी परमात्मा हैं। वे ही सबके कर्मोंके अधिष्ठाता—उनको कर्मानुसार फल देनेवाले और समस्त प्राणियोंके निवासस्थान—आश्रय हैं; तथा वे ही सबके साक्षी—शुभाशुभ कर्मको देखनेवाले, परम चेतनस्वरूप तथा सबको चेतना प्रदान करनेवाले, सर्वथा विशुद्ध अर्थात् निर्लेप और प्रकृतिके गुणोंसे अतीत भी हैं॥ ११॥

एको वशी निष्क्रियाणां बहूना-
मेकं बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥ १२॥

यः=जो; **एकः**=अकेला ही; **बहूनाम्**=बहुत-से; **निष्क्रियाणाम्**=वास्तवमें अक्रिय जीवोंका; **वशी**=शासक है; (और) **एकम्**=एक; **बीजम्**=प्रकृतिरूप बीजको; **बहुधा**=अनेक रूपोंमें परिणत; **करोति**=कर देता है; **तम्**=उस; **आत्मस्थम्**=हृदयस्थित परमेश्वरको; **ये**=जो; **धीराः**=धीर पुरुष;

अनुपश्यन्ति=निरन्तर देखते रहते हैं; **तेषाम्**=उन्हींको; **शाश्वतम्**=सदा रहनेवाला; **सुखम्**=परमानन्द प्राप्त होता है; **इतरेषाम्**=दूसरोंको; **न**=नहीं ॥ १२ ॥

व्याख्या—जो विशुद्ध चेतनस्वरूप परमेश्वरके ही अंश होनेके कारण वास्तवमें निष्क्रिय हैं, ऐसे अनन्त जीवात्माओंके जो अकेले ही नियन्ता—कर्मफल देनेवाले हैं, जो एक प्रकृतिरूप बीजको बहुत प्रकारसे रचना करके इस विचित्र जगत्के रूपमें बनाते हैं उन हृदयस्थित सर्वशक्तिमान् परम सुहृद् परमेश्वरको जो धीर पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं, निरन्तर उन्हींमें तन्मय हुए रहते हैं, उन्हींको सदा रहनेवाला परम आनन्द प्राप्त होता है; दूसरोंको अर्थात् जो इस प्रकार उनका निरन्तर चिन्तन नहीं करते उनको वह परमानन्द नहीं मिलता—वे उससे वञ्चित रह जाते हैं ॥ १२ ॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तत् कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १३ ॥

यः=जो; **एकः**=एक; **नित्यः**=नित्य; **चेतनः**=चेतन (परमात्मा); **बहूनाम्**=बहुत-से; **नित्यानाम्**=नित्य; **चेतनानाम्**=चेतन आत्माओंके; **कामान् विदधाति**=कर्मफलभोगोंका विधान करता है; **तत्**=उस; **सांख्ययोगाधिगम्यम्**=ज्ञानयोगसे और कर्मयोगसे प्राप्त करनेयोग्य; **कारणम्**=सबके कारणरूप; **देवम्**=परमदेव परमात्माको; **ज्ञात्वा**=जानकर; (मनुष्य) **सर्वपाशैः**=समस्त बन्धनोंसे; **मुच्यते**=मुक्त हो जाता है ॥ १३ ॥

व्याख्या—जो नित्य चेतन सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्मा अकेले ही बहुत-से नित्य चेतन जीवात्माओंके कर्मफलभोगोंका विधान करते हैं, जिन्होंने इस विचित्र जगत्की रचना करके समस्त जीवसमुदायके लिये उनके कर्मानुसार फलभोगकी व्यवस्था कर रखी है, उनको प्राप्त करनेके दो साधन हैं—एक ज्ञानयोग, दूसरा कर्मयोग; भक्ति दोनोंमें ही अनुस्यूत है, इस कारण उसका अलग वर्णन नहीं किया गया। उन ज्ञानयोग और कर्मयोगद्वारा प्राप्त

किये जानेयोग्य सबके कारणरूप परमदेव परमेश्वरको जानकर मनुष्य समस्त बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त हो जाता है। जो उन्हें जान लेता है और प्राप्त कर लेता है, वह कभी किसी भी कारणसे जन्म-मरणके बन्धनमें नहीं पड़ता। अतः मनुष्यको उन सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्माको प्राप्त करनेके लिये अपनी योग्यता और रुचिके अनुसार ज्ञानयोग या कर्मयोग—किसी एक साधनमें तत्परतापूर्वक लग जाना चाहिये॥ १३॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ १४॥*

तत्र=वहाँ; **न**=न तो; **सूर्यः**=सूर्य; **भाति**=प्रकाश फैला सकता है; **न**=न; **चन्द्रतारकम्**=चन्द्रमा और तारागणका समुदाय ही; (और) **न**=न; **इमाः**=ये; **विद्युतः**=बिजलियाँ ही; **भान्ति**=वहाँ प्रकाशित हो सकती हैं; **अयम्**=(फिर) यह; **अग्निः**=लौकिक अग्नि तो; **कुतः**=कैसे प्रकाशित हो सकता है; (क्योंकि) **तम् भान्तम् एव**=उसके प्रकाशित होनेपर ही (उसीके प्रकाशसे); **सर्वम्**=बतलाये हुए सूर्य आदि सब; **अनुभाति**=उसके पीछे प्रकाशित होते हैं; **तस्य**=उसके; **भासा**=प्रकाशसे; **इदम्**=यह; **सर्वम्**=सम्पूर्ण जगत्; **विभाति**= प्रकाशित होता है॥ १४॥

व्याख्या—उन परमानन्दस्वरूप परब्रह्म परमेश्वरके समीप यह सूर्य अपना प्रकाश नहीं फैला सकता, जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशित होनेपर जुगनूका प्रकाश लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार सूर्यका भी तेज वहाँ लुप्त हो जाता है। चन्द्रमा, तारागण और बिजली भी वहाँ अपना प्रकाश नहीं फैला सकते, फिर इस लौकिक अग्निकी तो बात ही क्या है; क्योंकि इस जगत्में जो कोई भी

* यह मन्त्र कठ० २। २। १५ और मुण्डक० २। २। १० में भी है।

प्रकाशशील तत्त्व हैं, वे उन परम प्रकाशस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमकी प्रकाशशक्तिके किसी अंशको पाकर ही प्रकाशित होते हैं। फिर वे अपने प्रकाशकके समीप कैसे अपना प्रकाश फैला सकते हैं ? अतः यही समझना चाहिये कि यह सम्पूर्ण जगत् उन जगदात्मा पुरुषोत्तमके प्रकाशसे ही प्रकाशित हो रहा है॥ १४॥

एको हँ्सो भुवनस्यास्य मध्ये
स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ १५॥

अस्य=इस; **भुवनस्य**=ब्रह्माण्डके; **मध्ये**=बीचमें; (जो) **एकः**=एक; **हंसः**=प्रकाशस्वरूप परमात्मा (परिपूर्ण है); **सः एव**=वही; **सलिले**=जलमें; **संनिविष्टः**=स्थित; **अग्निः**=अग्नि है; **तम्**=उसे; **विदित्वा**=जानकर; **एव**=ही; (मनुष्य) **मृत्युम् अत्येति**=मृत्युरूप संसार-समुद्रसे सर्वथा पार हो जाता है; **अयनाय**=दिव्य परमधामकी प्राप्तिके लिये; **अन्यः**=दूसरा; **पन्थाः**=मार्ग; **न**=नहीं; **विद्यते**=है॥ १५॥

व्याख्या—इस ब्रह्माण्डमें जो एक प्रकाशस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर सर्वत्र परिपूर्ण हैं, वे ही जलमें प्रविष्ट अग्नि हैं। यद्यपि शीतल स्वभावयुक्त जलमें उष्णस्वभाव अग्निका होना साधारण दृष्टिसे समझमें नहीं आता; क्योंकि दोनोंका स्वभाव परस्पर विरुद्ध है, तथापि उसके रहस्यको जाननेवाले वैज्ञानिकोंको यह प्रत्यक्ष दीखता है, अतः वे उसी जलमेंसे बिजलीके रूपमें उस अग्नितत्त्वको निकालकर नाना प्रकारके कार्योंका साधन करते हैं। शास्त्रोंमें भी जगह-जगह यह बात कही गयी है कि समुद्रमें बड़वानल अग्नि है। अपने कार्यमें कारण व्याप्त रहता है—इस न्यायसे भी जलतत्त्वका कारण होनेसे तेजस्तत्त्वका जलमें व्याप्त होना उचित ही है। किंतु इस रहस्यको न जाननेवाला जलमें स्थित अग्निको नहीं देख पाता। इसी प्रकार परमात्मा इस जड जगत्से स्वभावतः सर्वथा विलक्षण हैं; क्योंकि वे चेतन, ज्ञानस्वरूप और

सर्वज्ञ हैं तथा यह जगत् जड और ज्ञेय है। इस प्रकार जगत्से विरुद्ध दीखनेके कारण साधारण दृष्टिसे यह बात समझमें नहीं आती कि वे इसमें किस प्रकार व्याप्त हैं और किस प्रकार इसके कारण हैं। परंतु जो उस परब्रह्मकी अचिन्त्य अद्भुत शक्तिके रहस्यको समझते हैं, उनको ये प्रत्यक्षवत् सर्वत्र परिपूर्ण और सबके एकमात्र कारण प्रतीत होते हैं। उन सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्माको जानकर ही मनुष्य इस मृत्युरूप संसार-समुद्रसे पार हो सकता है—सदाके लिये जन्म-मरणसे सर्वथा छूट सकता है। उनके दिव्य परमधामकी प्राप्तिके लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है। अतः हमें उन परमात्माका जिज्ञासु होकर उन्हें जाननेकी चेष्टामें लग जाना चाहिये॥ १५॥

सम्बन्ध—*जिनको जाननेसे जन्म-मरणसे छूटनेकी बात कही गयी है, वे परमेश्वर कैसे हैं—इस जिज्ञासापर उनके स्वरूपका वर्णन किया जाता है—*

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनि-
र्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः
सँ्सारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥ १६ ॥

सः=वह; **ज्ञः**=ज्ञानस्वरूप परमात्मा; **विश्वकृत्**=सर्वस्रष्टा; **विश्ववित्**=सर्वज्ञ; **आत्मयोनिः**=स्वयं ही अपने प्राकट्यका हेतु; **कालकालः**=कालका भी महाकाल; **गुणी**=सम्पूर्ण दिव्यगुणोंसे सम्पन्न; (और) **सर्ववित्**=सबको जाननेवाला है; **यः**=जो; **प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः**=प्रकृति और जीवात्माका स्वामी; **गुणेशः**=समस्त गुणोंका शासक; (तथा) **संसारमोक्षस्थिति-बन्धहेतुः**=जन्म-मृत्युरूप संसारमें बाँधने, स्थित रखने और उससे मुक्त करनेवाला है॥ १६॥

व्याख्या—जिनका प्रकरण चल रहा है, वे ज्ञानस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तम सम्पूर्ण जगत्की रचना करनेवाले, सर्वज्ञ और स्वयं ही अपनेको प्रकट करनेमें हेतु हैं। उन्हें प्रकट करनेवाला कोई दूसरा कारण नहीं है। वे कालके भी महाकाल हैं, कालकी भी उनतक पहुँच नहीं है। वे कालातीत हैं।

कठोपनिषद्में भी कहा है कि सबका संहार करनेवाला मृत्यु उन महाकालरूप परमात्माका उपसेचन—खाद्य है (कठ० १ । २ । २४) । वे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सौहार्द्र, प्रेम, दया आदि समस्त कल्याणमय दिव्य गुणोंसे सम्पन्न हैं, संसारमें जितने भी शुभ गुण देखनेमें आते हैं, वे उन दिव्य गुणोंके किसी एक अंशकी झलक हैं। वे समस्त जीवोंको, उनके कर्मोंको और अनन्त ब्रह्माण्डोंके भीतर तीनों कालोंमें घटित होनेवाली छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी घटनाको भलीभाँति जानते हैं। वे प्रकृति और जीव-समुदायके (अपनी अपरा और परा—दोनों प्रकृतियोंके) स्वामी हैं तथा कार्य-कारण-रूपमें स्थित सत्त्व आदि तीनों गुणोंका यथायोग्य नियन्त्रण करते हैं। वे ही इस जन्म-मृत्युरूप संसार-चक्रमें जीवोंको उनके कर्मानुसार बाँधकर रखते, उनका पालन-पोषण करते और इस बन्धनसे जीवोंको मुक्त भी करते हैं। उनकी कृपासे ही जीव मुक्तिके साधनमें लगकर साधनके परिपक्व होनेपर मुक्त होते हैं ॥ १६ ॥

स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो
ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता ।
य ईशे अस्य जगतो नित्यमेव
नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय ॥ १७ ॥

सः हि=वही; **तन्मयः**=तन्मय; **अमृतः**=अमृतस्वरूप; **ईशसंस्थः**=ईश्वरों (लोकपालों) में भी आत्मरूपसे स्थित; **ज्ञः**=सर्वज्ञ; **सर्वगः**=सर्वत्र परिपूर्ण; (और) **अस्य**=इस; **भुवनस्य**=ब्रह्माण्डका; **गोप्ता**=रक्षक है; **यः**=जो; **अस्य**=इस; **जगतः**=सम्पूर्ण जगत्‌का; **नित्यम्**=सदा; **एव**=ही; **ईशे**=शासन करता है; (क्योंकि) **ईशनाय**=इस जगत्‌पर शासन करनेके लिये; **अन्यः**=दूसरा कोई भी; **हेतुः**=हेतु; **न**=नहीं; **विद्यते**=है ॥ १७ ॥

व्याख्या—जिनके स्वरूपका पूर्वमन्त्रमें वर्णन हुआ है, वे परब्रह्म परमेश्वर ही इस जगत्‌के—स्वरूपमें स्थित, अमृतस्वरूप—एकरस हैं; इस

जगत्के उत्पत्ति-विनाशरूप परिवर्तनसे उनका परिवर्तन नहीं होता। वे समस्त ईश्वरोंमें—समस्त लोकोंका पालन करनेके लिये नियुक्त किये हुए लोकपालोंमें भी अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं। वे सर्वज्ञ, सर्वत्र परिपूर्ण परमेश्वर ही इस समस्त ब्रह्माण्डकी रक्षा करते हैं; वे ही इस सम्पूर्ण जगत्का सदा यथायोग्य नियन्त्रण और संचालन करते हैं। दूसरा कोई भी इस जगत्पर शासन करनेके लिये उपयुक्त हेतु नहीं प्रतीत होता; क्योंकि दूसरा कोई भी सबपर शासन करनेमें समर्थ नहीं है॥ १७॥

सम्बन्ध—*उपर्युक्त परमेश्वरको जानने और पानेके लिये साधनके रूपमें उन्हींकी शरण लेनेका प्रकार बताया जाता है—*

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तँ् ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥ १८॥

यः=जो परमेश्वर; **वै**=निश्चय ही; **पूर्वम्**=सबसे पहले; **ब्रह्माणम्**=ब्रह्माको; **विदधाति**=उत्पन्न करता है; **च**=और; **यः**=जो; **वै**=निश्चय ही; **तस्मै**=उस ब्रह्माको; **वेदान्**=समस्त वेदोंका ज्ञान; **प्रहिणोति**=प्रदान करता है; **तम् आत्मबुद्धिप्रकाशम्**=उस परमात्मज्ञानविषयक बुद्धिको प्रकट करनेवाले; **ह देवम्**=प्रसिद्ध देव परमेश्वरको; **अहम्**=मैं; **मुमुक्षुः**=मोक्षकी इच्छावाला साधक; **शरणम्**=आश्रयरूपमें; **प्रपद्ये**=ग्रहण करता हूँ॥ १८॥

व्याख्या—उन परमेश्वरको प्राप्त करनेका सार्वभौम एवं सुगम उपाय सर्वतोभावसे उन्हींपर निर्भर होकर उन्हींकी शरणमें चले जाना है। अतः साधकको मनके द्वारा नीचे लिखे भावका चिन्तन करते हुए परमात्माकी शरणमें जाना चाहिये। जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले अपने नाभि-कमलमेंसे ब्रह्माको उत्पन्न करते हैं, उत्पन्न करके उन्हें निःसंदेह समस्त वेदोंका ज्ञान प्रदान करते हैं तथा जो अपने स्वरूपका ज्ञान करानेके लिये अपने

भक्तोंके हृदयमें तदनुरूप विशुद्ध बुद्धिको प्रकट करते हैं (गीता १० । १०), उन पूर्व-मन्त्रोंमें वर्णित सर्वशक्तिमान् प्रसिद्ध देव परब्रह्म पुरुषोत्तमकी मैं मोक्षकी अभिलाषासे युक्त होकर शरण ग्रहण करता हूँ—वे ही मुझे इस संसार-बन्धनसे छुड़ायें ॥ १८ ॥

निष्कलं निष्क्रियँ् शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
अमृतस्य परँ् सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम् ॥ १९ ॥

निष्कलम्=कलाओंसे रहित; **निष्क्रियम्**=क्रियारहित; **शान्तम्**=सर्वथा शान्त; **निरवद्यम्**=निर्दोष; **निरञ्जनम्**=निर्मल; **अमृतस्य**=अमृतके; **परम्**=परम; **सेतुम्**=सेतुरूप; (तथा) **दग्धेन्धनम्**=जले हुए ईंधनसे युक्त; **अनलम् इव**=अग्निकी भाँति (निर्मल ज्योतिःस्वरूप उन परमात्माका मैं चिन्तन करता हूँ) ॥ १९ ॥

व्याख्या—निर्गुण-निराकार परमात्माकी उपासना करनेवाले साधकको इस प्रकारकी भावना करनी चाहिये कि जो (पहले बतलायी हुई) सोलह कलाओंसे अर्थात् संसारके सम्बन्धसे रहित, सर्वथा क्रिया-शून्य, परम शान्त और सब प्रकारके दोषोंसे रहित हैं, जो अमृतस्वरूप मोक्षके परम सेतु हैं अर्थात् जिनका आश्रय लेकर मनुष्य अत्यन्त सुगमतापूर्वक इस संसार-समुद्रसे पार हो सकता है, जो लकड़ीका पार्थिव अंश जल जानेके बाद धधकते हुए अंगारोंवाली अग्निकी भाँति सर्वथा निर्विकार, निर्मल प्रकाश-स्वरूप, ज्ञानस्वरूप परम चेतन हैं, उन निर्विशेष निर्गुण निराकार परमात्माको तत्त्वसे जाननेके लिये उन्हींको लक्ष्य बनाकर उनका चिन्तन करता हूँ ॥ १९ ॥

सम्बन्ध—*पहले जो यह बात कही गयी थी कि इस संसार-बन्धनसे छूटनेके लिये उन परमात्माको जान लेनेके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है, उसीको दृढ़ किया जाता है—*

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥ २० ॥

यदा=जब; **मानवाः**=मनुष्यगण; **आकाशम्**=आकाशको; **चर्मवत्**=

चमड़ेकी भाँति; **वेष्टयिष्यन्ति**=लपेट सकेंगे; **तदा**=तब; **देवम्**=उन परमदेव परमात्माको; **अविज्ञाय**=बिना जाने भी; **दुःखस्य**=दुःख-समुदायका; **अन्तः**=अन्त; **भविष्यति**=हो सकेगा ॥ २० ॥

व्याख्या—भाव यह है कि जिस प्रकार आकाशको चमड़ेकी भाँति लपेटना मनुष्यके लिये सर्वथा असम्भव है, सारे मनुष्य मिलकर भी इस कार्यको नहीं कर सकते, उसी प्रकार परमात्माको बिना जाने कोई भी जीव इस दुःखसमुद्रसे पार नहीं हो सकता। अतः मनुष्यको दुःखोंसे सर्वथा छूटने और निश्चल परमानन्दकी प्राप्तिके लिये अन्य सब ओरसे मनको हटाकर एकमात्र उन्हींको जाननेके साधनमें तीव्र इच्छासे लग जाना चाहिये ॥ २० ॥

तपःप्रभावाद् देवप्रसादाच्च ब्रह्म
ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान्।
अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं
प्रोवाच सम्यगृषिसङ्घजुष्टम् ॥ २१ ॥

ह=यह प्रसिद्ध है कि; **श्वेताश्वतरः**=श्वेताश्वतर नामक ऋषि; **तपःप्रभावात्**=तपके प्रभावसे; **च**=और; **देवप्रसादात्**=परमदेव परमेश्वरकी कृपासे; **ब्रह्म**=ब्रह्मको; **विद्वान्**=जान सका; **अथ**=तथा; (उसने) **ऋषिसङ्घजुष्टम्**=ऋषि-समुदायसे सेवित; **परमम्**=परम; **पवित्रम्**=पवित्र (इस ब्रह्मतत्त्वका); **अत्याश्रमिभ्यः**=आश्रमके अभिमानसे अतीत अधिकारियोंको; **सम्यक्**=पूर्णरूपसे; **प्रोवाच**=उपदेश किया था ॥ २१ ॥

व्याख्या—यह बात प्रसिद्ध है कि श्वेताश्वतर ऋषिने तपके प्रभावसे अर्थात् समस्त विषय-सुखका त्याग करके संयममय जीवन बिताते हुए निरन्तर परमात्माके ही चिन्तनमें लगे रहकर उन परमदेव परमेश्वरकी अहैतुकी दयासे उन्हें जान लिया था। फिर उन्होंने ऋषि-समुदायसे सेवित—उनके परम लक्ष्य इस परम पवित्र ब्रह्मतत्त्वका आश्रमके अभिमानसे सर्वथा अतीत हुए देहाभिमानशून्य अधिकारियोंको भलीभाँति उपदेश किया था। इससे इस

****

मन्त्रमें यह बात भी दिखला दी गयी कि देहाभिमानशून्य साधक ही ब्रह्मतत्त्वका उपदेश सुननेके वास्तविक अधिकारी हैं ॥ २१ ॥

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम् ।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ॥ २२ ॥

[**इदम्**]=यह; **परमम्**=परम; **गुह्यम्**=रहस्यमय ज्ञान; **पुराकल्पे**=पूर्वकल्पमें; **वेदान्ते**=वेदके अन्तिम भाग—उपनिषद्में; **प्रचोदितम्**=भलीभाँति वर्णित हुआ था; **अप्रशान्ताय**=जिसका अन्तःकरण सर्वथा शान्त न हो गया हो, ऐसे मनुष्यको; **न दातव्यम्**=इसका उपदेश नहीं देना चाहिये; **पुनः**=तथा; **अपुत्राय**=जो अपना पुत्र न हो; **वा**=अथवा; **अशिष्याय**=जो शिष्य न हो, उसे; **न (दातव्यम्)**=नहीं देना चाहिये ॥ २२ ॥

व्याख्या—यह परम रहस्यमय ज्ञान पूर्वकल्पमें भी वेदके अन्तिम भाग—उपनिषदोंमें भलीभाँति वर्णित हुआ था। भाव यह कि इस ज्ञानकी परम्परा कल्प-कल्पान्तरसे चली आती है, यह कोई नयी बात नहीं है। इसका उपदेश किसे दिया जाय और किसे नहीं, ऐसी जिज्ञासा होनेपर कहते हैं—'जिसका अन्तःकरण विषय-वासनासे शून्य होकर सर्वथा शान्त न हो गया हो, ऐसे मनुष्यको इस रहस्यका उपदेश नहीं देना चाहिये; तथा जो अपना पुत्र न हो अथवा शिष्य न हो, उसे भी नहीं देना चाहिये।' भाव यह है कि या तो जो सर्वथा शान्तचित्त हो, ऐसे अधिकारीको देना चाहिये अथवा जो अपना पुत्र या शिष्य हो, उसे देना चाहिये; क्योंकि पुत्र और शिष्यको अधिकारी बनाना पिता और गुरुका ही काम है; अतः वह पहलेसे ही अधिकारी हो, यह नियम नहीं है ॥ २२ ॥

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।
प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ २३ ॥

यस्य=जिसकी; **देवे**=परमदेव परमेश्वरमें; **परा**=परम; **भक्तिः**=भक्ति है;

(तथा) **यथा**=जिस प्रकार; **देवे**=परमेश्वरमें है; **तथा**=उसी प्रकार; **गुरौ**=गुरुमें भी है; **तस्य महात्मनः**=उस महात्मा पुरुषके हृदयमें; **हि**=ही; **एते**=ये; **कथिताः**=बताये हुए; **अर्थाः**=रहस्यमय अर्थ; **प्रकाशन्ते**=प्रकाशित होते हैं; **प्रकाशन्ते महात्मनः**=उसी महात्माके हृदयमें प्रकाशित होते हैं॥ २३ ॥

व्याख्या—जिस साधककी परमदेव परमेश्वरमें परम भक्ति होती है तथा जिस प्रकार परमेश्वरमें होती है, उसी प्रकार अपने गुरुमें भी होती है, उस महात्मा—मनस्वी पुरुषके हृदयमें ही ये बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं। अतः जिज्ञासुको पूर्ण श्रद्धालु और भक्त बनना चाहिये। जिसमें पूर्ण श्रद्धा और भक्ति है, उसी महात्माके हृदयमें ये गूढ अर्थ प्रकाशित होते हैं। इस मन्त्रमें अन्तिम वाक्यकी पुनरावृत्ति ग्रन्थकी समाप्ति सूचित करनेके लिये है॥ २३ ॥

॥ षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥



॥ कृष्णयजुर्वेदीय श्वेताश्वतरोपनिषद् समाप्त ॥

